उर्दू-काव्य-संग्रह

सम्पादक
डॉ० मोहन अवस्थी

प्रकाशक
साहित्य संगम
इलाहाबाद

H
819.1
Aw 14 U
819·1
Aw 14 U

INDIAN INSTITUTE
OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY, SHIMLA

उर्दू-काव्य-संग्रह

CATALOGUED

सम्पादक

डॉ० मोहन अवस्थी डी० फिल्०, डी० लिट्०

प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

साहित्य संगम, इलाहाबाद

प्रकाशक :—
साहित्य संगम
नया १००, लूकरगंज
इलाहाबाद—२११००१

IIAS, Shimla
Library
H 819.1 Aw 14 U
00104385

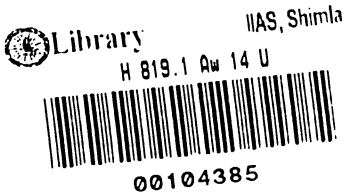

H
819.1
Aw 14 U

~~मूल्य—छह रुपये~~
कापीराइट—डा० मोहन अवस्थी
संस्करण—१९८४

साहित्य संगम
संशोधित मूल्य [illegible]

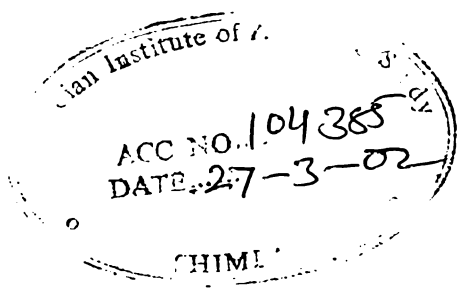

Indian Institute of Advanced Study
ACC NO. 104385
DATE 27-3-02
SHIMLA

मुद्रक:
वी० के० अग्रवाल
अनूप प्रिंटिंग प्रेस
११९-सी, बाई का बाग
इलाहाबाद—३
फोन ५०४७३

अनुक्रम

उर्दू कविता	....	....	५
१. मीर	....	....	१५
ग़ज़ल	....	....	१६
ग़ज़ल	....	...	१७
ग़ज़ल	....	....	१८
ग़ज़ल	....	....	१९
२. मीर हसन	....	...	२०
शहज़ादः बेनज़ीर की शादी	....	....	२१
जोगन और चाँदनी रात	....	....	२७
३. नज़ीर अकबराबादी	....	—	२९
बचपन	....	....	३०
बालपन बाँसुरी बजैया	....	....	३२
मौत	....	....	३८
आगरे की पैराकी	....	....	४१
आदमीनामः	....	....	४४
४. ज़ौक़	...	....	४७
क़सीदः दर मदहे अबूज़फ़र बहादुरशाह		....	४८
५. ग़ालिब	...	—	५१
ग़ज़ल	...	....	५२
ग़ज़ल	....	....	५३
ग़ज़ल	....	...	५४

६. अनीस ५५
हज़रत अब्बास की शुजाअत ५६
७. चकबस्त ६१
रामायन का एक सीन ६२
८. फ़िराक़ गोरखपुरी ६९
ग़ज़ल ७०
ग़ज़ल ७१
तरानाए इश्क ७२
रुबाइयाँ ७३
९. साहिर लुधियानवी ७४
ताज महल ७५
मादाम ७६
आवाजे आदम ७८
१०. रामप्रसाद बिस्मिल ७९
मुक्तक ७९
क्रान्ति का गीत ८०
बलिदान का गीत ८०

——

उर्दू कविता

उर्दू भाषा एवं काव्य का इतिहास पढ़ने पर एक विचित्र बात सामने आती है कि उर्दू भाषा का जन्म उत्तर में हुआ, लेकिन उर्दू-कविता ने अपनी आँखें दक्षिण में खोलीं। 'उर्दू' शब्द के ऐतिहासिक महत्व के झमेले में न पड़कर हमारे लिए यह जानना आवश्यक है कि कविता में 'उर्दू' शब्द गद्य की अपेक्षा बहुत बाद में प्रयुक्त हुआ। उर्दू-काव्य को पहले रेखता कहा जाता था। इससे पहले हिन्दी, हिन्दुई या हिन्दवी शब्दों का प्रयोग भी इसी अर्थ में होता था। तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी तक उत्तर-दक्षिण का सम्पर्क सुदृढ़ हो चुका था क्योंकि सन् १३१६ तक खिलजियों ने दक्षिण को अपने राज्य में मिला लिया था। भाषा-सम्पर्क के संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण घटना मुहम्मद तुग़लक़ (राज्यकाल सन्-१३२५–१३५१) का राजधानी परिवर्तन है। उसने दिल्ली के स्थान पर देवगिरि को अपनी राजधानी बनाया और सारे दिल्ली-वासियों को वहाँ चलने की आज्ञा दी। लोग वहाँ जाकर रहे। लेकिन तुग़लक़ को यह प्रयोग बहुत महँगा पड़ा अतएव उसने दिल्ली को फिर राजधानी बनाया। मार्ग की कठिनाइयों का स्मरण करके अनेक लोग दिल्ली वापस नहीं आये और वहीं बस गये। इस प्रकार उर्दू भाषा की जड़ें दक्षिण में जम गईं।

दूसरी घटना जिसने उर्दू की नींव दृढ़ की, बहमनी वंश की स्थापना (सन् १३४७) है। इस वंश के संस्थापक हसन गंगू ने अपने गुरु गंगू ब्राह्मण को राजस्व-सचिव नियुक्त किया और उसके बाद राजस्व सचिव पद पर ब्राह्मण की नियुक्ति बहमनी वंश की परम्परा बन गई। इस प्रकार माल-विभाग में हिन्दुओं की नियुक्ति से हिन्दी-भाषा वहाँ की राजभाषा बन गई।

बहमनी राज्य के पतन के बाद बीजापुर (सन् १४९०) तथा गोलकुंडा (सन् १५१८) में इस हिन्दी अथवा हिन्दवी भाषा की पर्याप्त उन्नति

हुई। गोलकुंडा के कुतुबशाही शासकों में मुहम्मद कुली कुतुबशाह (सन् १५८०–१६११) स्वयं इस भाषा में कविता करता था। दक्खिनी भाषा के सम्मिश्रण से यह हिन्दवी भाषा दक्खिनी या दक्षिणी हिन्दी कहलाई। बीजापुर के आदिलशाहियों में अली आदिलशाह द्वितीय (सन् १६५६–१६७६) भी दक्खिनी का सत्कवि था। इन दोनों राजवंशों के दरबारों में अनेक कवि तथा विद्वान् रहते थे जिनमें इब्न निशाती, गवासी, वजही, तहसीनुद्दीन, मुल्ला कुतुबी, जुनैदी, तबई, नूरी, रस्मी, नुसरती, हाशमी आदि के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं।

इस समय तक दक्खिनी की कविता भारतीय पद्धति पर विषय-प्रतिपादन करती थी। लेकिन दकन के कवि वली (सन् १६८८–?७४४) के उदय ने दक्खिनी हिन्दी के रूप में ऐसा परिवर्तन उपस्थित किया कि वह धीरे-धीरे उस भिन्न मार्ग पर चलने लगी जिसे हम उर्दू-शैली के नाम से पुकारते हैं। कहा जाता है कि वह एक बार सन् १७०० में दिल्ली गये जहाँ शाह सादुल्ला गुलशन से उनकी भेंट हुई। शाह ने उन्हें आज्ञा दी कि "यह सब विषय जो बेकार फ़ारसी में भरे पड़े हैं, रेख्ता भाषा में उपयोग में लाओ"। दूसरी बारी वली अपने रेख्ता काव्य-संग्रह के साथ सन् १७२२ में दिल्ली पुनः पधारे। उनके दीवान् (काव्य-संग्रह) का ऐसा आदर हुआ कि उसके शेर लोगों को कंठस्थ हो गये। वली के अनुकरण पर उत्तर में भी रेख्ता में कविता होने लगी। इस प्रकार फ़ारसी में काव्य-रचना करने वाले उत्तर भारत के शाइर रेख्ता में कविताएँ लिखने लगे। अस्तु, 'आबरू', 'हातिम', 'नाजी', 'मजमून' तथा मिर्जा मज़हर जानजानां रेख्ता के पथ-प्रदर्शक बने।

इस समय कविता में दक्खिनी के अनेक भद्दे प्रयोग होते थे। भाषा स्थिर नहीं थी, शैली भी सुनिश्चित नहीं हो सकी थी। छंद-तुक आदि में भी नियमहीनता मिलती है। छंदों में शैथिल्य और भाषा में अनगढ़पन है।

भाषा-परिष्कार का यह कार्य दिल्ली के शाइरों ने ही प्रारम्भ किया।

मीर हसन, दर्द, सौदा और मीर इन चार कवियों ने उर्दू-कविता में चार चाँद लगा दिये। ये लोग भाषा के आचार्य हैं। इन कवियों ने सभी काव्य-रूपों को पुष्ट किया। छंद की शिथिलता दूर हुई। जो भद्दे और भौंढ़े शब्द थे उन्हें निकालकर उनके स्थान पर फ़ारसी रंग प्रदान किया गया। कविता में कोमलता तथा मिठास बढ़ी और दक्खिनीपन दूर होने लगा। इस समय काव्य-भाषा का रूप निखरा, परन्तु शब्दों के लिंगों के विषय में प्रायः मतभेद मिलता है। कविता में मुहावरे, उपमाएँ आदि फ़ारसी रंग की होने लगीं।

यह काल मुग़ल साम्राज्य के पतन का काल है। दिल्ली जो उर्दू-कविता का केन्द्र थी, अफ़ग़ानों तथा मरहठों के आक्रमणों से तबाह हो रही थी। दिल्ली के बादशाह शाह आलम द्वितीय (सन् १७६१–१८०६) कवियों के संरक्षक थे, को ग़ुलाम क़ादिर ने अंधा कर दिया था। दिल्ली की नित्य की तबाही से विपन्न अनेक कवि दिल्ली छोड़कर लखनऊ आ बसे। लखनऊ के नवाब उन दिनों अपने वैभव के शीर्ष पर थे और दिल्ली की स्पर्द्धा में कवियों का बहुत सम्मान करते थे। फलतः मीर, सौदा, मीर हसन और सोज़ जैसे प्रसिद्ध शाइरों ने लखनऊ में आश्रय प्राप्त किया।

लखनऊ दरबार के आश्रित रहकर भी ये कवि अपने स्वाभिमान का पूरा ध्यान रखते थे परन्तु बाद में इंशा (मृत सन् १८१०), मुसहफ़ी (सन् १७५०–१८२४) और जुरअत (मृत सन् १८१०) ने प्रतिस्पर्द्धावश एक दूसरे पर ऐसा कीचड़ उछाला कि उनके काव्य का वह अंश पढ़ते शर्म आती है। कविता में छिछोरापन बढ़ता गया, अश्लीलता आम फ़हम चीज़ बन गई और उसका चरम विकास 'रेख्ती शैली' में हुआ, जिसमें स्त्रियों की भाषा के आवरण में नग्नता और अश्लीलता को मादक ढंग से प्रस्तुत किया गया। इस युग में गंदगी के प्रचारक अन्य कवियों में 'चिरकीन' के नाम से प्रायः सभी परिचित होंगे। कहने का आशय यह कि दिल्ली के काव्य में जो सहजता, मिठास, कोमलता और गहराई थी वह लखनऊ-कविता में नहीं मिलती।

दिल्ली में कवियों को बहादुरशाह 'ज़फ़र' (सन् १७७५–१८६२) के राज्यकाल में पुनः संरक्षण मिला। ज़फ़र स्वयं एक अच्छे शाइर थे अतएव उनके यहाँ कवियों का सम्मान होना स्वाभाविक था। यदि हम कहें कि उस समय काव्य-रचना राष्ट्रीय व्यसन मानी जाती थी तो अत्युक्ति न होगी। उर्दू-कविता की उन्नति का यह स्वर्ण-युग है। इस युग में ज़ौक़ (सन् १७८९–१८५४), ग़ालिब (सन् १७९७–१८६९) और मोमिन सन् (१८००–१८५१) उत्पन्न हुए जो उर्दू के महान् कवि हैं। भाव तथा कला इस युग में अपनी चरमता पर पहुँची हुई मिलती है। इस युग के काव्य में फ़ारसीयत इतनी अधिक है कि बिना काव्य-रूढ़ियाँ समझे कविता का अर्थ लगाना बहुत कठिन है।

जैसा कि हम उल्लेख कर चुके हैं मीर, सौदा, हसन तथा इंशा आदि शाइरों के लखनऊ आ जाने से लखनऊ में भी काव्य-रुचि जाग्रत हो गई थी। परन्तु 'नासिख़' (मृत्यु सन् १८३८) और 'आतश' (सन् १७६७–१८४६) ने कविता की एक नई शैली का प्रवर्तन किया जो दिल्ली कविता से अलग है। इस शैली में शब्दों पर विशेष बल दिया जाता था। यहाँ कारीगरी ज्यादा है, भावों की सहजता का ध्यान नहीं रक्खा जाता। ये 'जबाँदाँ' शाइर शब्दाडम्बर तथा तुक जोड़ने की कसरतें दिखाते हैं, अनुभूति के आधार पर हृदय टटोलकर नहीं लिखते। कविता की यह शैली 'लखनऊ शैली' के नाम से प्रसिद्ध है। नासिख़ तथा आतश के शिष्यों ने अपने उस्तादों के दिखाए मार्ग का अनुसरण किया।

लखनउ-केन्द्र की कविता में दिल्ली-केन्द्र की अपेक्षा भाव-गांभीर्य तथा हृदय-स्पर्शिता की कमी है। परन्तु यह बात ग़ज़ल के क्षेत्र में ही सत्य है। इस युग में लखनऊ में प्रख्यात मर्सियागो शाइर अनीस (सन् १८०२-१८७४) तथा दबीर (सन् १८०३-१८७५) उत्पन्न हुए, जिन्होंने जीवन को अनेकधा चित्रित किया और उर्दू-काव्य-जगत् को करुणरस से आप्लावित कर दिया। कविता अपवित्र हो गई थीं, इन कवियों ने उसे निर्मलता तथा पवित्रता प्रदान की।

जब दिल्ली और लखनऊ के कवि अपनी-अपनी काव्य-शैली को ध्यान में रखकर रचना कर रहे थे तब एक कवि ऐसा भी था जो कभी तो हृदय की थिरकन पर अहा ! हा ! कहता था और कभी अनुभूति के दर्द को छंदों में ढालता था। उस कवि का नाम है नज़ीर अकबराबादी। यदि दिल्ली के कवियों को हम रीतिसिद्ध कवि और लखनऊ के कवियों को रीतिबद्ध कहें, तो नज़ीर (सन् १७४०–१८३०) उर्दू के रीति-मुक्त कवि हैं। नज़ीर के लिए जीवन एक काव्य था। नज़ीर में कविता सुचिंतित न होकर सहजोद्रेक रूप में प्रवाहित हुई है। वह जनता की भाषा बोलते हैं, जनता के चित्र खींचते हैं।

इस समय तक उर्दू के विभिन्न काव्य-रूप काफ़ी मंज चुके थे। ग़ज़ल के क्षेत्र में मीर, ग़ालिब, मोमिन, 'नासिख़' तथा 'आतश' और कसीदे में सौदा तथा ज़ौक अपना सिक्का जमा चुके थे। मीर-ग़ालिब एवं सौदा-ज़ौक अपने क्षेत्र के बादशाह हैं और आज तक प्रमाण माने जाते है। सौदा ने हज्व लिखकर उर्दू में हास्यरस की अवतारणा भी प्रचुर मात्रा में की। मसनवी लिखने में मीर हसन (सन् १७३६–१७८६) एवं पं० दयाशंकर 'नसीम' (सन् १८११–१८४२) अपना जवाब नहीं रखते।

सन् १८५७ के ग़दर में कविता के आश्रय-स्थल दिल्ली तथा लखनऊ के दरबार समाप्त हो गये। धीरे-धीरे अँगरेज़ों का आधिपत्य सारे भारत पर हो गया। इस युग की नई शिक्षा ने विचारों में परिवर्तन किया अतः कविता का रंग-ढंग भी बदला। मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' इस नवयुग के अग्रदूत हैं। आज़ाद ने मार्ग दिखाया, लेकिन 'हाली' (सन् १८३७–१९१४) ने उसे सिद्धांत रूप में परिणत किया। 'हाली' ने कविता को संकीर्ण क्षेत्र से बाहर निकाला और भारतीय मिट्टी से प्रेम करने की सलाह दी। उन्होंने भारतवर्ष की ऋतुओं का वर्णन किया तथा आधुनिक विषय कविता में समाविष्ट किये। अभी तक काव्य-रूप प्रधान थे, 'हाली' ने विषय को प्रमुखता दी। उन्होंने नज़ीर को श्रेष्ठ कवि माना। 'हाली' से पहले उर्दू के आलोचक 'नज़ीर' की बहुत

निम्न-कोटि का कवि मानते थे। दृष्टिकोण का यह परिवर्तन उर्दू-कविता के इतिहास की बहुत महत्वपूर्ण घटना है।

विषय-वस्तु की महत्ता काव्य-रूप पर हावी हुई। परिणाम-स्वरूप ग़ज़ल में भी प्रेम-विरह के स्थान पर सामयिक समस्याओं की अभिव्यंजना होने लगी। अकबर इलाहाबादी (सन् १८४६–१९२१) ने राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक समस्याओं को लेकर व्यंग्य-शैली में रचना की। चकबस्त (सन् १८८२–१९२६) ने राष्ट्रीय जोश से भरा कलाम पेश किया। इक़बाल (सन् १८७५–१९३८) ने कविता को दार्शनिक गंभीरता दी।

इक़बाल ने प्रारंभ में राष्ट्रीय कविताएँ लिखीं, परन्तु बाद में उन्होंने ऐसा चोला बदला कि उनके काव्य में साम्प्रदायिकता बढ़ती गई। चकबस्त अन्त तक जागरण-गान गाते रहे। इन दो शाइरों के बाद जोशीली कविता के लिए 'जोश' मलीहाबादी (सन् १८९४–१९८२) का नाम उल्लेखनीय है। 'जोश' यदि एक ओर शाइरे-शबाब हैं, तो दूसरी ओर शाइरे इंक़लाब भी। लेकिन इंक़लाब का तात्पर्य मार्क्सवादी विचारधारा से नहीं है। उनमें जो जोश है वह ग़ुलामी की ज़ंजीर तोड़ डालने के लिए है।

सन् १९३६ के बाद से प्रगतिवादी विचारधारा का प्रचार हुआ। फलतः जोश के बाद कविता की दो दिशाएँ हो गई। प्रगतिवादी कवियों में फ़ैज, मजाज़, सरदार जाफ़री तथा कैफ़ी आज़मी के नाम उल्लेखनीय हैं। कुछ शाइरों ने ग़ज़ल के क्षेत्र में नई कला, नये भाव और नई भाषा-सम्बन्धी प्रयोग किये। इन कवियों में हसरत मुहानी, फ़ानी बदायूंनी तथा फ़िराक़ गोरखपुरी प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त जिगर मुरादाबादी और साहिर लुधियानवी भी ग़ज़लगो शाइरों में उल्लेख करने योग्य हैं।

यद्यपि आधुनिक उर्दू-कविता को काव्य-रूपों की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता, क्योंकि उसके सारे बंधन टूट चुके हैं, फिर भी उसके कुछ काव्य-रूप इतने महत्वपूर्ण हैं कि उनका परिचय आवश्यक है।

शेर—छंद (बहर) के एक चरण को मिसरा और दो मिसरों को एक शेर कहते हैं। जिस प्रकार हिन्दी छंद कहने से चार चरणों का अर्थ समझा जाता है उसी प्रकार उर्दू बहर कहने से दो मिसरों का बोध होता है।

ग़ज़ल—ग़ज़ल अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है स्त्रियों से प्रेम की बातें करना। ग़ज़ल की विषय-वस्तु अधिकतर प्रेम-विरह के भावों से सम्बन्धित होती हैं। प्रेम के संदर्भ में यह ध्यान रखना चाहिए कि स्त्री-पुरुष के प्रेम के अतिरिक्त यह प्रेम मातृभूमि, स्वतंत्रता, ईश्वर अथवा कर्तव्य आदि का प्रेम भी हो सकता है। इस प्रकार विभिन्न स्थितियों में कवि गुलो-बुलबुल, चमन-आशियाँ, सैयाद-बाग़बाँ, शराब-साक़ी, तेग़, शम्शीर अथवा खंजर को प्रसंगानुसार अपनी लक्ष्य-पूर्ति के लिए रखता है। कभी-कभी कवि संसार की नश्वरता की ओर संकेत और कभी पाखंडियों पर व्यंग्य भी करता है। ग़ज़ल का मुख्य विषय प्रेम है, लेकिन यह प्रेम स्थान-स्थान पर आध्यात्मिक रंग से रंजित रहता है। प्रेम के कारण ग़ज़ल की भाषा सरल, मधुर और कोमल होती है। लेकिन ग़ज़ल की असली कसौटी उसकी मार्मिकता है।

ग़ज़ल का हर शेर स्वतः पूर्ण होता है। ग़ज़ल में कम से कम पाँच और अधिक से अधिक दस शेर होते हैं। लेकिन इस बंधन को कवियों ने सर्वत्र स्वीकार नहीं किया है। शेर के अंत में जो शब्द बार बार आता है उसे रदीफ़ और उससे पहले जो बदल-बदल कर तुकांत शब्द आता है उसे क़ाफ़िया कहते हैं। ग़ज़ल का प्रथम शेर 'मत्ला' कहलाता है। मत्ला के दोनों चरण रदीफ़-युक्त होते हैं। ग़ज़ल के अंतिम शेर में शाइर प्रायः अपना उपनाम रख देता है। इस शेर को 'मक्ता' कहते हैं।

क़सीदः—छंद आदि में ग़ज़ल की तरह ही होने पर भी क़सीदः विषयवस्तु में ग़ज़ल से भिन्न है। क़सीद में प्रायः पच्चीस से सत्तर तक शेर होते हैं यद्यपि इस प्रतिबंध का पालन अनिवार्य नहीं है। क़सीदः में किसी की प्रशंसा या उपदेश का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन होता है। क़सीदे की दो शैलियाँ प्रचलित हैं—पहली, जिसमें कवि आलम्बन को

संबोधित करके एकदम कहना प्रारंभ कर देता है, दूसरी, जिसमें प्रकृति की पृष्ठ-भूमि में रखकर आलम्बन के अनुकूल स्तुतिपरक वातावरण उत्पन्न किया जाता है। इस प्रकार उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का समावेश स्वतः हो जाता है। क़सीदे की शब्दावली में ज्यादातर फ़ारसी का अनुकरण रहता है। अतिशयोक्ति, ऊहात्मकता, आडम्बरपूर्ण भाषा, बड़े-बड़े रूपक तथा अनोखी उपमाएँ क़सीदे की विशेषताएँ हैं।

मर्सिया:—मर्सिया: सामान्यतया शोक कविता है, लेकिन उर्दू में मर्सिया: से तात्पर्य उस कविता से होता है जो इमाम हुसैन तथा उनके परिवार के सदस्यों की शहादत के सम्बंध में लिखी जाती है। मर्सिया: के नमूने तो उर्दू कविता में प्रारंभ से ही मिलते हैं लेकिन ये मर्सिये चार या तीन चरणों के होते थे। लखनऊ की कविता में मर्सिये षट्पदी रूप में लिखे गये और उस समय विभिन्न मनोभावों तथा प्रकृति चित्रण-कौशल में मर्सिये की कला अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गई। मर्सिये के सामान्यतः नौ अंग होते हैं :—

चेहर:— इसमें प्रातःकाल तथा रात का दृश्य, पारिवारिक सम्बधों का चित्रण, यात्रा की कठिनाइयाँ, ईश्वर एवं महापुरुषों की स्तुति आदि का वर्णन रहता है।

माजर:— वहाँ के जीवन का हाल, शिविर का वर्णन आदि।

सरापा – नायक के नख-शिख का वर्णन।

रुख़सत— नायक का इमाम हुसैन से विदा होकर युद्ध-क्षेत्र की ओर प्रस्थान।

आमद—युद्धस्थल में पहुँचना।

रजज़— युद्ध-क्षेत्र में पहुँचकर नायक की दर्पोक्तियाँ तथा दुश्मन को ललकारना।

जंग— युद्ध का वर्णन। इस वर्णन में नायक की तलवार का वर्णन, उसके तलवार चलाने के लाघव का चित्रण और

घोड़े की प्रशंसा के साथ-साथ घोड़े के कौशल का वर्णन रहता है।

शहादत नायक का बलिदान।

बैन— नायक की मृत्यु पर परिवारवालों का विलाप।

मसनवी—मसनवी का विषय अधिकतर युद्ध और प्रेम होता है। घटनाएँ प्रायः घिसी-पिटी एक-सी रहती हैं। किसी राजकुमार और राजकुमारी के प्रेम का वर्णन और बीच की बाधाओं का अंकन, यही मसनवी की विषय-वस्तु होती है। लेकिन मसनवी में कथा का अंश गौण और भाषा पर ध्यान विशेष रहता है। मसनवी में तत्कालीन समाज के रीति-रिवाज, वेश-भूषा कथोपकथन आदि के सजीव चित्र मिलते हैं। प्रेम आदि के अलावा नये कवियों ने सामाजिक एवं राजनैतिक कथा-वस्तु लेकर भी मसनवियों की रचना की है। मसनवी के शेरों में भाव-सम्बद्धता होती है और दो-दो चरण तुकांत रहते हैं।

रुबाई—रुबाई में चार चरण होते हैं। पहला, दूसरा और चौथा चरण एक ही तुक का होता है। रुबाई के लिए कुछ छंद (बहर) निर्धारित हैं। रुबाई में प्रायः कोई आध्यात्मिक या गंभीर विचार अभिव्यक्त किया जाता है। परंतु विषय की यह शर्त मान्य नहीं रही। रुबाई का चौथा चरण बहुत चुस्त होता है, क्योंकि उसी चरण में भाव की चरमता रहती है। कवि अपना उपनाम प्रायः तीसरे चरण में रखता है।

क़त्अ—रुबाई की भाँति क़त्अ भी कुछ पंक्तियों में एक प्रभावपूर्ण बात अभिव्यक्त करता है। क़त्अ में एक विचार को चार या अधिक से अधिक छह मिसरों में व्यक्त किया जाता है। रुबाई का स्वर प्रायः आध्यात्मिक या उपदेशात्मक होता है। लेकिन क़त्अ के लिए ऐसा कोई बंधन नहीं है। क़त्अ का तुक-बंध रुबाई से भिन्न होता है। इसमें पहले और दूसरे की तुक मिलना आवश्यक नहीं है।

उर्दू-कविता में जो नाज़ुकख़याली, लोच, संक्षिप्त और सद्यः प्रभाव-शालिता है, वह उसकी निजी सम्पत्ति है। उस काव्य-वैभव से हिन्दी के

विद्यार्थी भी परिचित हो सकें, यह उद्देश्य ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत संग्रह तैयार किया गया है। संकलन में सभी काव्यरूपों को समाविष्ट करने का प्रयत्न है। लेकिन यह ध्यान भी बराबर रहा है कि सकलन की रचनाएँ हिन्दी के विद्यार्थियों के लिए दुर्बोध न हों। अतएव कुछ कवि ही इस संग्रह में आ सके हैं। हर कवि के विषय में एक आलोचनात्मक टिप्पणी भी दे दी गई है। यदि किसी मर्मज्ञ उर्दू-काव्य-प्रेमी के किसी प्रिय कवि या किसी प्रिय रचना को इसमें स्थान न मिल सका हो तो आप इसे मेरी विवशता समझकर क्षमा करेंगे, ऐसी आशा है।

—मोहन अवस्थी

मीर (सन् १७२५-१८१०)

मीर तक़ी 'मीर' उर्दू के एक ऐसे महाकवि हैं जिनके काव्य की उत्कृष्टता प्रत्येक रुचि के आलोचकों ने मुक्त हृदय से स्वीकार की है। 'मीर' का सारा जीवन विपत्तियों की करुणा विगलित कहानी है, इसलिए उनके शेर पीड़ा के पुंजीभूत रूप हैं। 'मीर' बड़े नाज़ुक मिज़ाज, स्वाभिमानी एवं गंभीर व्यक्ति थे। उनकी कविता में उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट झलक मिलती है। यों तो 'मीर ने सभी काव्य-रूपों में रचना की है और वह वासोख्त शैली के प्रवर्त्तक भी कहे जाते हैं, लेकिन ग़ज़ल और मसनवी में वह सर्वोच्च माने गये हैं। उर्दू के अतिरिक्त फ़ारसी में भी उनका एक दीवान् है। उन्होंने फ़ारसी में अपनी आत्मकथा 'ज़िक्रे मीर' तथा उर्दू कवियों का एक तज़्किरः 'निकातुश्शोअरा' भी लिखा है, जो उर्दू काव्य के इतिहास में बहुत महत्व रखता है।

ग़ज़ल

था मुस्तआर[१] हुस्न से उसके जो नूर था।
खुर्शीद में भी उसका ही ज़र्रः जुहूर[२] था।

पहुँचा जो आप को तो मैं पहुँचा खुदा के तईं
मालूम यह हुआ कि बहुत मैं भी दूर था।

कल पाँव एक कासः-ए-सर[३] पर जो आ गया
यकसर वह उस्तुख़ान[४] शिकस्तों से चूर था।

कहने लगा कि देखके चल राह बेख़बर
मैं भी कभू किसू का सरे-पुरग़ुरूर था।

था वह तो रश्के-हूरे-बिहिश्ती हमीं में 'मीर'
समझे न हम तो फ़हम[५] का अपनी क़ुसूर था।

●

है तहे दिल बुतों का क्या मालूम ?
निकले पर्दे से क्या खुदा मालूम ?

यही जाना कि कुछ न जाना हाय
सो भी इस उम्र में हुआ मालूम।

इल्म सबको है यह कि सब तू है
फिर है अल्लाह कैसा ना मालूम ?

गर्चे तू ही है सब जगह लेकिन
हमको तेरी नहीं है जा[६] मालूम।

---

१. माँगा हुआ २. प्रकट ३. खोपड़ी ४. हड्डी ५. समझ ६. जगह

ग़ज़ल

दिल की तह की कही नहीं जाती नाज़ुक हैं असरार[1] बहुत।
अंछर तो हैं इश्क़ के दो ही लेकिन है बिस्तार बहुत।

काफ़िर मुस्लिम दोनों हुए पर निस्बत उससे कुछ न हुई
बहुत लिए तस्बीह[2] फिरे हम पहना है ज़ुन्नार[3] बहुत।

हिज्र[4] ने जी ही मारा हमारा क्या कहिए क्या मुश्किल है
उससे जुदा रहना होता है जिससे हमें है प्यार बहुत।

●

उल्टी हो गई सब तदबीरें कुछ न दवा ने काम किया।
देखा इस बीमारीए-दिल ने आख़िर काम तमाम किया।

अह्‌दे-जवानी रो रो काटा पीरी में लीं आँखें मूँद
यानी रात बहुत थे जागे सुब्‌ह हुई आराम किया।

नाहक़ हम मजबूरों पर यह तोहमत है मुख़्तारी की
चाहते हैं सो आप करें हैं हमको अबस[5] बदनाम किया।

सरज़द[6] हमसे बेअदबी तो वह्‌शत में भी कम ही हुई
कोसों उसकी ओर गए पर सज्दः हर हर गाम[7] किया।

याँ के सफ़ेदो-स्याह में हमको दख़्ल जो है सो इतना है
रात को रो रो सुब्‌ह किया, दिन को जूँ तूँ शाम किया।

'मीर' के दीनो-मज़हब को अब पूछते क्या हो उन्ने तो
क़श्क़:[8] खेंचा दैर[9] में बैठा कब का तर्क इस्लाम किया।

---

१. भेद २. माला ३. जनेऊ ४. वियोग ५. बेकार ६. घटित होना
७. क़दम ८. तिलक ९. मंदिर

ग़ज़ल

अय बूए-गुल समझ के महकियो पवन के बीच।
ज़ख़्मी पड़े है मुर्ग़ हज़ारों चमन के बीच।
सुथराई और नाज़ुकी गुलबर्ग[1] की दुरुस्त
पर वैसी बू कहाँ कि जो है उस बदन के बीच।
या साथ ग़ैर के है तुम्हें वैसी बातचीत
सौ सौ तरह का लुत्फ़ है एक इक सुख़न के बीच।
या पास मेरे लगती है चुप ऐसी आन कर
गोया जुबां नहीं है तुम्हारे दहन[2] के बीच।
फ़रहादो-क़ैसो-'मीर' ये आवारगाने-इश्क़
यूँ ही गए हैं सबकी रही मन की मन के बीच!

●

ग़म रहा जब तक कि दम में दम रहा।
दम के जाने का निहायत ग़म रहा।
दिल न पहुँचा गोश:ए-दामाँ तलक
क़त्र:ए-ख़ूं था मिज़:[3] पर जम रहा।
जाम:ए-अह्‌रामे-ज़ाहिद[4] पर न जा
था हरम[5] में लेकि नामहरम[6] रहा।
मेरे रोने की हक़ीक़त जिसमें थी
एक मुद्दत तक वह काग़ज नम रहा।
सुब्हे पीरी शाम होने आई 'मीर'
तू न चेता याँ बहुत दिन कम रहा।

---

१. पंखड़ी २. मुंह ३. बरौनी ४. सयमी जो कपड़ा हज के समय पहनता है ५. काब: ६. अज्ञानी

ग़ज़ल

हस्ती अपनी हबाब[1] की सी है।
ये नुमाइश सराब[2] की सी है।

नाज़ुकी उसके लब की क्या कहिए
पंखड़ी इक गुलाब की सी है।

बार बार उसके दर प जाता हूँ
हालत अब इज़्तेराब[3] की सी है।

मैं जो बोला कहा कि ये आवाज़
उसी खानःख़राब की सी है।

'मीर' उन नीमबाज़[4] आँखों में
सारी मस्ती शराब की सी है।

---

१. बुद्बुद २. मृग मरीचिका ३. बेचैनी ४. अधखुली

मीर हसन (सन् १७२७–१७८६)

मीर हसन की कविताएँ सादगी, सरलता तथा उक्ति-सौष्ठव के कारण बहुत प्रिय रहीं हैं। उन्होंने ग़ज़ल, रुबाई, मर्सिय: एवं क़सीदः आदि सभी क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा दिखाई। उर्दू-कवियों के जीवन-वृत्त की दृष्टि से फ़ारसी में लिखा उनका 'तज़्किर:ए-शोअराए-उर्दू' भी महत्वपूर्ण है। परन्तु जिस काव्य-रूप ने उन्हें अमर कर दिया वह है मसनवी। मीर हसन ने कुल मिलाकर एक दर्जन से ऊपर मसनवियाँ लिखीं हैं, लेकिन उनकी कीर्ति-पताका फहरानेवाली उनकी प्रसिद्ध मसनवी 'सेहरुल्बयान' ही है। इस मसनवी में शहज़ादा बेनज़ीर और बद्रे मुनीर के प्रेम का वर्णन है। बद्रे मुनीर की सखी जोगिन का वेश बनाकर शहज़ादे का पता लगाती है और दोनों के संयोग का माध्यम बनती है।

सन् १७८५ में लिखी हुई इस मसनवी की भाषा आज भी हमें हमारे युग की भाषा मालूम पड़ती है। इस मसनवी में तत्कालीन समाज के वैवाहिक रीति-रिवाज, वेश-भूषा तथा आनन्दोत्सव के हृदयहारी चित्र मिलते हैं। वर्णन सुन्दर, विषय प्रतिपादन श्लाघ्य, कथोपकथन प्रशसनीय एवं भाषा मनोरम तथा मुहावरेदार है।

शहज़ादः बेनज़ीर की शादी

किधर है तू ऐ साक़ीए–गुलबदन
धरे आज उस शम्मा रू की लगन।

बुला मुत्रिबाने-खुश-आवाज़[1] को
कि आवें लिये अपने सब साज़ को।

वो असबाब शादी का तैयार हो
मुकर्रर न फिर जिसकी तकरार हो।

बड़ी ख़ाहिशों से जब आया वो रोज़
चढ़ा ब्याहने वो महे-शब-फ़रोज़[2]।

महल से निकल जब हुआ वो सवार
बजे शादियाने[3] बहम एक बार।

करूँ उस तजम्मुल[4] को क्योंकर अयाँ
कि बाहर है तक़रीर से ये बयाँ।

वो दूल्हा के उठते ही इक ग़ुल पड़ा
लगा देखने उसको छोटा बड़ा।

कोई दौड़ घोड़ों को लाने लगा
कोई हाथियों को बिठाने लगा।

लगा कोई कहने इधर आइयो
अरे रथ शिताबी[5] मेरी लाइयो।

---

१. मधुर स्वर गायक २. रात को रौशन करने वाला-चाँद ३. बाजे
४. वभब ५. शीघ्र

Indian Institute of

किसी ने किसी को पुकारा कहीं
न लाने प म्याने के मारा कहीं।

कोई पालकी में चला हो सवार
पियादों की रख अपने आगे क़तार।

जो कसरत में देखा कि गाड़ी नहीं
कोई माँगे ताँगे प बैठा कहीं।

सिपर और क़ब्ज़े खड़कने लगे
सवारों के घोड़े भड़कने लगे।

टिकोरे वो नौबत के और उनके बाद
गरजना वो धौंसों का मानिन्द राद[1]।

वो शहनाइयों की सुहानी धुनें
जिन्हे गोशे-ज़ुह्‌र:[2] मुफ़स्सिल[3] सुनें।

हज़ारों तमामी के तख़्ते-रवाँ
और अहले निशात उन प जल्व: कुनाँ।

वो तब्लों का बजना और उनकी सदा
ये गाना कि अच्छा बना लाडला।

वो नौश: का घोड़े प होना सवार
वो मोती का सेहरा जवाहर निगार[4]।

ठिठककर वो घोड़े का चलना सँभल
हुमा के वो दोनों तरफ़ मोरछल।

---

१. बादल २. ज़ोहरा सितारे (शुक्र) के कान ३. स्पष्ट ४. जवाहर जटित

वो फ़ानूसें आगे ज़मुर्रुद निगार
कि हो सब्ज़मीना[२] जिन्हों पर निसार।

दोरस्ते जो रौशन चराग़ाँ हुए
पतंगे खुशी से ग़ज़ल-खां हुए।

हुआ दिल जो रौशन चराग़ान से
पढ़े शेर 'नूरी' के दीवान से।

चराग़ों के तिरपोलिए जावजा
और उनमें वो वाज़ारियों की सदा।

कोई पान बेचे खिलौने कोई
कोई दालमोठ और सलोने कोई।

तमाशाइयों का जुदा इक हुजूम
पतंगे गिरें जूँ चराग़ाँ प झूम!

खड़कना वो नौबत का वाजे के साथ
गरजना वो धौंसों का डंकों के साथ।

बराती इधर और उधर जूक़ जुक़[२]
वो आवाजे-करना वो आवाजे-बूक़[३]।

वो काले पियादे वो उनकी नफ़ीर
कि ता चर्ख़ पहुँचे सदा उनकी चीर।

वो आराइश और गुल कई रंग के
वो हाथी कि वो देव थे जंग के।

वो अबरक की टट्टी वो वत्ती के झाड़
कहे तू कि तिनके के ओझल पहाड़।

---

१. शराब की बोतल २. झुंड के झुंड ३. नरसिंघा

दोरस्तः बराबर बराबर वो तख्त
किसी पर कँवल और किसी पर दरख्त।

वो रंगी दरख्तऔर वो शम्ओ-चराग़
खिले जिस तरह लालःए-नूर-बाग़[1]।

जहाँ तक नज़र आवे उनकी क़तार
तिलिस्मात की सी हवा पुर बहार।

अनारों का दग़ना तमंचे का ज़ोर
सितारों का छुटना पटाखों का शोर।

उड़ाया सितारों को जो आग ने
तो हाथी लगे वन से फिर भागने।

वो महताबों का छूटना बार-बार
हर इक रंग की जिससे दूनी बहार।

धुआँ छुप गया नूर में नूर हो
सियाही उड़ी शब की काफ़ूर हो।

सरासर वह हर तर्फ़ मिशअल के झाड़
कि जूँ नूर के मुश्तइल[2] हों पहाड़।

ज़रीपोश सरदार सब इकदिगर
फिरें बर्क़ की तरंह ईधर उधर।

कहे तू कि नजदीक और दूर से
ज़मीनो-ज़माँ भर गया नूर से।

---

१. ज्योत्युद्यान का लालः फूल २. प्रज्ज्वलित, रौशन

जब आई वो दूल्हन के घर पर बरात
कहूँ वाँ के आलम की क्या तुमसे बात।

हवा वाँ की सुह्बत की रश्के-बिहिश्त
धरे लख़लखे गिर्द अंबर सरिश्त[1]।

खड़े बादलों के वो ख़ेमे बलंद
करें आलमे-नूर जिसको दो चंद।

अजब मस्नद इक जगमगी और फ़र्श
तमामी के आलम का चौकोर फ़र्श।

बिलूरीं धरे शम्मादाँ बेशुमार
चढ़ीं मोम की बत्तियाँ चार-चार।

नए रंग के और नए तौर के
धरे हर तरफ़ झाड़ बिल्लौर के।

तमाशाइयों की ये कसरत थी बस
मिले एक से एक सब पेशो-पस।

दो जानूँ ज़रीपोश बैठे तमाम
शरावे-ख़ुशी के लिए नोश जाम।

वो दूल्हा का मस्नद प जा बैठना
बराबर रफ़ीक़ों का आ बैठना।

करूँ राग और नाच का क्या बयाँ
क़दीमी किसी वक़्त का सा समाँ।

---

१. अम्बर के गुणवाले

वो शादी की मज्लिस वो गाने का रंग
वो जी की खुशी और वो दिल की तरंग।

वो बीड़ों के पत्ते पड़े हर तरफ़
गमे-दिल जिसे देख हो बर तरफ़।

इधर का तो ये रंग था और यह राग
महल में उधर तूरियाँ[1] और सुहाग।

उतरने की वाँ समधनों की फबन
खिले फूल जैसे चमन दर चमन।

गले में पहनना वो हँस हँस के हार
सटासट वो फूलों की छड़ियों की मार।

दिखाना वो बन बन के अपना बनाव
वो आपस की रस्में वो आपस के चाव।

हँसी शोरो-गुल क़हक़हे तालियाँ
सुहानी सुहानी नई गालियाँ।

ग़रज़ क्या लिखूं ताब मुझमें नहीं
न देखेगा आलम वो कोई कहीं।

---

१. शादी के गाने

जोगन और चाँदनी रात

क़ज़ारा[1] सुहाना सा एक दश्त था
कि इक शब हुआ उसका वाँ बिस्तरा।

वो थी इत्तफ़ाक़न[2] शबे-चारदह[3]
अदा से वो बैठी वहाँ रश्के-मह।

बिछी हर तरफ़ चादरे-नूर थी
यही चाँदनी, उसको मंजूर थी।

बिछा मिर्गछाले को और ले के बीन
दो-ज़ानू सँभल कर वो ज़ुह्र: जबीन[4]।

किदारा बजाने लगी शौक़ में
लगी दस्तो-पा मारने ज़ौक़ में।

किदारा ये बजने लगा उसके हाथ
कि मह ने किया दाइर:[5] लय के साथ।

बँधा उस जगह इस तरह का समाँ
सबा भी लगी रक़्स[6] करने वहाँ।

वो सुनसान जंगल को नूरे-क़मर
वो बुर्राक़[7] सा हर तरफ़ दश्तोदर।

वो उजाला सा मैदाँ चमकती सी रेत
उगा नूर से चाँद तारों का खेत।

---

१. संयोगवश २. अचानक ३. चौदहवीं की रात ४. शुक्र तारे से मस्तक वाली ५. घेरा ६. नृत्य ७. निर्मल, चमकदार

दरख़्तों के पत्ते चमकते हुए
ख़सो-ख़ार सारे झमकते हुए।

दरख़्तों के साये से मह का ज़ूहर
गिरे जैसे चलनी से छन छन के नूर।

हवा बँध गई उस घड़ी इस उसूल
बसेरा गए जानवर अपना भूल।

दरख़्तों से लग लग के बादे-सबा[1]
लगी वज्द[2] में बोलने वाह वा।

किदारे का आलम था ये उस घड़ी
कि थी चाँदनी हर तरफ़ ग़श पड़ी!

— —

१. ठंडी हवा २. मस्ती

नज़ीर अकबराबादी (सन् १७३५-१८३०)

वली मुहम्मद 'नज़ीर' उर्दू के रीतिमुक्त, स्वच्छंद तथा मस्त कवि हैं। उर्दू कवियों में यही एक ऐसे शाइर हैं जो सच्चे अर्थों में हिन्दुस्तानी कवि कहे जा सकते हैं। उनकी रचनाएँ भारतीय मिट्टी की सोंधी महक से सुवासित हैं। उनकी कविता में जनजीवन का सजीव चित्र मिलता है। उनकी भाषा सरल, सीधी एवं मार्मिक है। 'नज़ीर' का हृदय बड़ा विशाल था। साम्प्रदायिकता उन्हें छू तक नहीं गई थी। जिस मुहब्बत व इज्ज़त से उन्होंने इस्लाम के महापुरुषों को स्मरण किया है उसी सम्मान आदर और प्रेम से उन्होंने कृष्ण तथा नानक को भी मस्तक झुकाया है। उनके दिल में ईद और होली के लिए बराबर जगह है। बच्चे, बूढ़े, जवान सभी से सम्बद्ध विषय उनकी रचनाओं में गृहीत हुए हैं। हर वस्तु कविता का विषय बन सकती है इसका 'नज़ीर' के काव्य से अधिक उत्तम उदाहरण अन्यत्र नहीं प्राप्त हो सकता।

बचपन

क्या दिन थे यारो वो भी थे जब कि भोले भाले
निकले थी दाई लेकर फिरती कभी ददा[1] ले
चोटी कोई रखाले बद्धी कोई पिन्हा ले
हँसली गले में डाले मिन्नत कोई बढ़ा ले।
मोटे हों या कि दुबले गोरे हों या कि काले।
क्या ऐश लूटते हैं मासूस भोले भाले।

दिल में किसी के हर्गिज़ नै शर्म नै हया है
आगा भी खुल रहा है पीछा भी खुल रहा है
पहने फिरे तो क्या है नंगे फिरे तो क्या है
याँ यूँ भी वाह वा है और वूँ भी वाह वा है।
कुछ खाले इस तरह से कुछ उस तरह से खाले।
क्या ऐश लूटते हैं मासूम भोले भाले।

मर जाए कोई तो भी कुछ उसका ग़म न करना
नै जाने कुछ बिगड़ना नै जाने कुछ सँवरना
उनकी बला से घर में हो क़ैद या कि घिरना
जिस बात पर ये मचले फिर वो ही कर गुज़रना
माँ ओढ़नी को बावा पगड़ी को बेच डाले।
क्या ऐश लूटते हैं मासूम भोले भाले।

जो कोई चीज़ देवे नित हाथ ओटते हैं
गुड़ बेर मूली गाजर सब मुँह में घोटते है

---

१. धाय

बाबा की मूँछ माँ की चोटी खसोटते हैं
गर्दों में अट रहे हैं खाकों में लोटते हैं
कुछ मिल गया सो पी ले कुछ मिल गया सो खाले।
क्या ऐश लूटते हैं मासूम भोले भाले।

जो उनको दी सो खालें फीका हो या सलोना
हैं वादशः से बेहतर जब मिल गया खिलौना
जिस जा प नींद आई फिर वाँ ही उनको सोना
परवा न कुछ पलंग की नै चाहिए बिछौना
भोंपू कोई बजा ले फिरकी कोई फिरा ले।
क्या ऐश लूटते हैं मासूम भोले भाले।

ये बालेपन का यारो आलम अजब बना है
ये उम्र वो है इसमें जो है सो बादशा है
और सच अगर्चे पूछो तो बादशा भी क्या है
अब तो 'नज़ीर' मेरी सबको यही दुआ है
जीते रहें सभों के आसो-मुराद वाले।
क्या ऐश लूटते हैं मासूस भोले भाले।

बालपन बाँसुरी बजैया

यारो सुनो यह दध के लुटैया का बालपन
और मधुपुरी नगर के बसैया का बालपन
मोहन सरूप किरत करैया का बालपन
बन बन के ग्वाल गौओं चरैया का बालपन
ऐसा था बंसरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं किशन कन्हैया का बालपन।

ज़ाहिर में सुत वो नंद जसोदा के आप थे
वर्नः वह आप माई थे और आप ही बाप थे
पर्दे में बालपन के ये उनके मिलाप थे
जोती सरूप कहिए जिन्हें सो वह आप थे
ऐसा था बंसरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं किशन कन्हैया का बालपन।

उनको तो बालपन से न था काम कुछ ज़रा
संसार की जो रीत थी उसको रखा बजा
मालिक थे वो तो आपी उन्हें बालपन से क्या
वाँ बालपन जवानी बुढ़ापा सब एक था
ऐसा था बंसरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं किशन कन्हैया का बालपन।

मालिक जो होवे उसको सभी ठाठ याँ सरे
चाहे वह नंगे पाँव फिरे या मुकुट धरे
सब रूप हैं उसी के जो कुछ चाहे सो करे
चाहे जवाँ हो चाहे लड़कपन से मन भरे

ऐसा था बंसरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं किश्न कन्हैया का बालपन।

यूं बालपन तो होता है हर तिफ़्ल[1] का भला
पर उनके बालपन में तो कुछ और ही भेद था
उस भेद की भला जी किसी को ख़बर है क्या
क्या जाने अपनी खेलने आए थे क्या कला
ऐसा था बंसरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं किश्न कन्हैया का बालपन।

व्योहार उनके यारो अजब जाए ग़ौर थे
लड़कों में वे कहाँ हैं जो कुछ उनमें तौर थे
आपही वह परभूनाथ थे आप ही विदौर[2] थे
उनके तो बालपन ही में तेवर कुछ और थे
ऐसा था बंसरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं किश्न कन्हैया का बालपन।

वो बालपन में देखते जीधर नज़र उठा
पत्थर भी एक बार तो बन जाता मोम का
उस रूप को गियानी कोई देखता जो आ
दंडौत ही वो करता था माथा झुका झुका
ऐसा था बंसरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं किश्न कन्हैया का बालपन।

पैदा तो मुद्दतों में हुए श्याम जी मुरार
गोकुल में आके नंद के घर में लिया क़रार
नंद उनको देख होवे था जी जान से निसार
पानी जसोदा पीती थी पानी को वार वार।

१. बच्चा २. दास

ऐसा था बंसरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं किशन कन्हैया का बालपन।

जब तक कि दूध पीते रहे ग्वाल बिरजराज
सबके गले के कठले थे और सब के सर के ताज
सुन्दर जो नारियाँ थीं वह करती थीं कामोकाज
रसिया का उन दिनों तो अजब रस का था मिज़ाज
ऐसा था बंसरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं किशन कन्हैया का बालपन।

अब घुटनुओं का उनके मैं चलना बयाँ करूँ
या मीठी बातें मुँह से निकलना बयाँ करूँ
या बालकों में इस तरह पलना बयाँ करूँ
या गोदियों में उनका मचलना बयाँ करूँ
ऐसा था बंसरी के बजैया का बालपन।
क्या-क्या कहूँ मैं किशन कन्हैया का बालपन।

पाटी पकड़के चलने लगे जब मदन गोपाल
धरती तमाम हो गई इक आन में निहाल
बासुक चरन छुअन को चले छोड़कर पताल
आकास पर भी धूम मची देख उनकी चाल
ऐसा था बंसरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं किशन कन्हैया का बालपन।

जब पाँव चलने लागे बिहारी नवल किशोर
माखन उचक्के ठहरे मलाई दही के चोर
मुँह हाथ दूध से भरे कपड़े भी शोर बोर
डाला तमाम बिरज की गलियों में अपना शोर
ऐसा था बंसरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं किशन कन्हैया का बालपन।

करने लगे ये धूम जो गिरधारी नंदलाल
इक आप और दूसरे साथ उनके ग्वाल बाल
माखन दही चुराने लगे सबको देखभाल
दी अपनी दूध चोरी की घर घर में धूम डाल।
ऐसा था बंसरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं किशन कन्हैया का बालपन।

कोठी में होवे फिर तो उसी को ढँढ़ोरना
गोली में हो तो उसमें भी जा मुँह को बोरना
ऊँचा हो तो भी काँधे पै चढ़कर न छोड़ना
पहुँचा न हाथ तो उसे मुरली से फोड़ना
ऐसा था बंसरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं किशन कन्हैया का बालपन।

गर चोरी करते आ गई ग्वालिन कोई वहाँ
और उसने आ पकड़ लिया तो उससे बोले याँ
मैं तो तेरे दही की उड़ाता था मक्खियाँ
खाता नहीं मैं उसकी निकाले था चूँटियाँ
ऐसा था बंसरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं किशन कन्हैया का बालपन।

गुस्से में कोई हाथ पकड़ती जो आनकर
तो उसको वे सरूप दिखाते थे मनोहर
जो आपी लाके धरती वो माखन कटोरी भर
गुस्सा वो उसका आन में जाता वहीं उतर
ऐसा था बंसरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं किशन कन्हैया का बालपन।

उनको तो देख ग्वालिनें जी जान पाती थीं
घर में इसी वहाने से उनको बुलाती थीं
ज़ाहिर में उनके हाथ से वो गुल[1] मचाती थीं
पर्दे में सब वो किश्न के बलिहारी जाती थीं
ऐसा था बंसरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं किश्न कन्हैया का बालपन।

सब मिल जसोदा पास यह कहती थीं आके वीर
अब तो तुम्हारा कान्ह हुआ है बड़ा शरीर
देता है हमको गालियाँ फिर हारता है चीर
छोड़े दही न दूध न माखन मही न खीर
ऐसा था बंसरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं किश्न कन्हैया का बालपन।

माता जसोदा उनकी बहुत करती मिन्तियाँ
और कान्ह को डरातीं उठा बन की साटियाँ
जब कान्ह जी जसोदा से करते यही बयाँ
तुम सच न जानो माता यह सारी है झूटियाँ
ऐसा था बंसरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं किश्न कन्हैया का बालपन।

इक रोज मुँह में किश्न ने माखन झुका दिया
पूछा जसोदा ने तो वहीं मुँह छिपा दिया
मुँह खोल तीन लोक का आलम दिखा दिया
इक आन में दिखा दिया और फिर भुला दिया
ऐसा था बंसरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं किश्न कन्हैया का बालपन।

---

१. शोर

थे कान्ह जी तो नंद जसोदा के घर के माह[1]
मोहन नवल किशोर की थी सबके दिल में चाह
उनको जो देखता था सो कहता था वाह वाह
ऐसा तो बालपन न हुआ है किसी का आह
ऐसा था बंसरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं किशन कन्हैया का बालपन।

१. चाँद

मौत

दुनिया में अपना जी कोई बहला के मर गया
दिल तंगियों से और कोई उकता के मर गया
आक़िल था वो तो आप को समझा के मर गया
बेअक़्ल छाती पीट के घबरा के मर गया
दुख पाके मर गया कोई सुख पाके मर गया।
जीता रहा न कोई हर इक आके मर गया।

दिन-रात दुंद मची है यहाँ और पड़े है जंग
चलती है नित अजल[1] की सिनाँ गोली और तुफ़ग[2]
जिसका क़दम बढ़ा वो मुआ वूँ ही बेदिरंग[3]
जो जी छुपा के भागा तो उसका हुआ ये रंग
वह भागने में तेग़ो-तबर खाके मर गया।
जीता रहा न कोई हर इक आके मर गया।

पैदा हुए हैं ख़ल्क़ में अब जितने जुज़ो-कुल
या चुप गुज़ारी उम्र व या धूम कर चुहुल
जब आनकर फ़ना ने खिलाया अजल का गुल
काम आई कुछ किसी की ख़मोशी न शोरो-ग़ुल
चुपके कोई मुआ कोई चिल्ला के मर गया।
जीता रहा न कोई हर इक आके मर गया।

गर लाख इशरतों से है दिल में ये धूमधाम
या सौ मुसीबतों से हुआ ग़म का इज़्दहाम[4]

---

१. मृत्यु २. तोप का गोला ३. बेखटके ४. जमाव

आखिर को जब अजल ने किया आनकर सलाम
ग़म में किसी हसीं के कोई हो गया तमाम
कोई हूर परियाँ छाती से लिपटा के मर गया।
जीता रहा न कोई हर इक आके मर गया।

पढ़कर नमाज़ कोई रहा पाक बा-वजू[1]
कोई शराब पीके रहा मस्त कू ब कू
नापाकी पाकी मौत के ठहरी न रू ब रू
कोई इबादतों से मुआ होके सुर्ख़ रू
नापाक रू सियाह भी पछता के मर गया।
जीता रहा न कोई हर इक आके मर गया।

बिल्फ़र्ज़ गर किसी को हुई याद कीमिया
या मुफ़िलसी में एक ने ख़ूने-जिगर पिया
कोई ज़ियादः उम्र से इक दम नहीं जिया
सूखी किसी ने रोटी चबा ग़म में जी दिया
क़लिया पुलाव ज़र्दः कोई खाके मर गया।
जीता रहा न कोई हर इक आके मर गया।

गेसू बढ़ा के कोई मशायख[2] हुआ यहाँ
या बेनवा[3] हो कोई हुआ खुदमुंडा यहाँ
जब मुर्शिदे-अजल[4] का क़दम आया दर्मियाँ
कोई तो लम्बी दाढ़ी लिए होगया रवाँ
मूँछें भँवें तलक कोई मुंडवाके मर गया।
जीता रहा न कोई हर इक आके मर गया।

---

१. नमाज पढ़ने से पहले हाथ मुंह धोकर पवित्र होना २. सूफी लोग
३. फकीर ४. मृत्यु का पीर

गर एक बेवक़ार हुआ एक क़द्रदार
सर पर लगा जब आनके तेग़े-अजल का वार
बेक़द्री काम आई किसी की न कुछ वक़ार[1]
था बेहया सो वो तो मुआ खोके नगो-आर[2]
औ जिसको शर्म थी सो वह शर्मा के मर गया।
जीता रहा न कोई हर इक आके मर गया।

कोई ठुड्डी चाबाता कोई मोठ और मटर
जिस दम क़ज़ा ने हाथ में ली तेग़ और सिपर[3]
काम आई कुछ फ़क़ीरी न कुछ तख़्त और छतर
ये ख़ाक पर मुआ वो मुआ तख़्त के उपर
थी जिसकी जैसी क़द्र वो बतलाके मर गया।
जीता रहा न कोई हर इक आके मर गया।

आशिक़ होकर किसी ने किसी गुल की चाह की
माशूक़ी काम आई किसी की न आशिक़ी
और जब अजल की दोनों से आकर लगनलगी
आशिक़ ने अपने इश्क़ बढ़ाने में जान दी
दिलबर भी अपने हुस्न को चमका के मर गया।
जीता रहा न कोई हर इक आके मर गया।

कितनों में बढ़ के ऐसी बढ़ी उल्फ़तों की चाह
जो जिस्मो-जान एक हुए उनके वाह वाह
आशिक़ मुआ तो मर गया माशूक़ ख़ामख़ाह
माशूक़ मर गया तो वो आशिक़ भी करके आह
उस गुल बदन की क़ब्र उपर जाके मर गया।
जीता रहा न कोई हर इक आके मर गया।

---

१. सम्मान २. लज्जा ३. ढाल

आगरे की पैराकी

जब पैरने की रुत में दिलदार पैरते हैं
आशिक़ भी साथ उनके ग़मख़ार पैरते हैं
भोले सयाने नाँदाँ हुशियार पैरते हैं
पीरो-जवान लड़के अय्यार पैरते हैं
अदना ग़रीब मुफ़िलस ज़रदार पैरते हैं
इस आगरे में क्या क्या ऐ यार पैरते हैं।

बरसात में जो आकर चढ़ता है ख़ूब दर्या
हरजा ख़ड़ी व चादर बंद और नाँद चकवा
मेंढ़ा[1] भँवर उछालन चक्कर समेत नाला
भेंड़ा गँभीर तख़्ता कश्ती पछाड़ गर्रा
वाँ भी हुनर से अपने हुशियार पैरते हैं।
इस आगरे में क्या क़्या ऐ यार पैरते हैं।

तिरवेनी में अहा हा होती हैं क्या बहारें
ख़िल्क़त[2] के ठठ हज़ारों पोशाक की क़तारें
पैरें नहावें उछलें कूदें लड़े पुकारें
ले ले वो छींट गोते खा खा के हाथ मारें
क्या क्या तमाशे कर कर इज़हार पैरते हैं।
इस आगरे में क्या क्या ऐ यार पैरते हैं।

जमना के पाट गोया सहने-चमन हैं बारे
पैराक उसमें पैरें जैसे कि चाँद तारे

---

१. उठी हुई लहर २. जनता

मुँह चाँद के से टुकड़े तन गोरे प्यारे-प्यारे
परियों से फिर रहे हैं मँझधार और किनारे
कुछ वार पैरते हैं कुछ पार पैरते हैं।
इस आगरे में क्या क्या ऐ यार पैरते हैं।

कितने खड़े हैं पैरें अपना दिखाके सीना
सीना चमक रहा है हीरे का जूँ नगीना
आधे बदन प पानी आधे प है पसीना
सर्वों का बह चला है गोया कि इस क़रीना
दामन कमर प बाँधे दस्तार पैरते हैं।
इस आगरे में क्या क्या ऐ यार तैरते हैं।

जाते हैं इनमें कितने पानी प साफ़ सोते
कितनों के हाथ पिंजरे कितनों के सर प तोते
कितने पतंग उड़ाते कितने सुई पिरोते
हुक़्क़ों का दम लगाते हँस हँस के शाद होते
सौ सौ तरह का कर कर बिस्तार पैरते हैं
इस आगरे में क्या क्या ऐ यार पैरते हैं।

कुछ नाच की बहारें पानी के कुछ कनारे
दर्या में मच रहे हैं इंदर के सौ अखाड़े
लबरेज़ गुलरुखों से दोनों तरफ़ कगारे
बजरे व नाव चप्पू[1] डोंगे बने निवाड़े
इन जमघटों से होकर सरशार पैरते हैं।
इस आगरे में क्या क्या ऐ यार पैरते हैं।

---

१. पतवार

नावों में वो जो गुलरू नाचों में छक रहे हैं
जोड़े बदन में रंगीं गहने भभक रहे हैं
तानें हवा में उड़तीं तब्ले खड़क रहे हैं
ऐशो-तरब की धूमें पानी छपक रहे हैं।
सौ ठाठ के बनाकर अतवार[1] पैरते हैं।
इस आगरे में क्या क्या ऐ यार पैरते हैं।

हर आन बोलते हैं सय्यद कबीर की जै
फिर इसके बाद अपने उस्ताद पीर की जै
मोरो मुकुट कन्हैया जमना के तीर की जै
फिर हाल के सब अपने खुर्दों[2] कबीर की जै
हर दम ये कर खुशी की गुफ़्तार पैरते हैं।
इस आगरे में क्या क्या ऐ यार पैरते हैं।

क्या क्या 'नज़ीर' याँ के हैं पैरने के बानी
है जिनके पैरने की मुल्कों में आन मानी
उस्ताद और खलीफ़ा शागिर्द यारे-जानी
सब खुश रहें है जब तक जमना के बीच पानी
क्या क्या हँसी खुशी से हर बार पैरते हैं।
इस आगरे में क्या क्या ऐ यार पैरते हैं।

---

१. तरीके २. छोटे बड़े

आदमीनामः

दुनिया में पादशह है सो है वो भी आदमी
और मुफ़लिसो-गदा है सो है वो भी आदमी
ज़रदार बेनवा है सो है वो भी आदमी
नेमत जो खा रहा है सो है वो भी आदमी।
टुकड़े चवा रहा है सो है वो भी आदमी।

फ़िऔंन[१] ने किया था जो दावा खुदाई का
शद्दाद[२] भी विहिश्त बनाकर हुआ ख़ुदा
नमरूद[३] भी ख़ुदा ही कहाता था बर्मला
यह बात है समझने की आगे कहूँ मैं क्या
याँ तक जो हो चुका है सो है वो भी आदमी।

याँ आदमी ही नार[४] है और आदमी ही नूर
याँ आदमी ही पास है और आदमी ही दूर
कुल आदमी का हुस्नो-क़ुब्ह[५] में है याँ ज़हूर
शैताँ भी आदमी है जो करता है मक्रो-ज़ूर[६]
और हादी[७] रहनुमा है सो है वो भी आदमी।

---

१. मिस्र के नरेशों की उपाधि २. एक बहुत अत्याचारी बादशाह जो अपने को ईश्वर कहलवाता था और जिसने एक कृत्रिम स्वर्ग का निर्माण कराया था ३. एक अत्याचारी नरेश जो अपने को ईश्वर कहता था और जिसने हजरत इब्राहीम को आग में डलवाया था। ४. आग ५. सौन्दर्य एवं भोंड़ापन ६. छल ७. पथ प्रदर्शक

मस्जिद भी आदमी ने बनाई है याँ मियाँ
बनते हैं आदमी ही इमाम[१] और ख़ुत्बः[२] ख़ाँ
पढ़ते हैं आदमी ही क़ुरान और नमाज़ याँ
और आदमी ही उनकी चुराते हैं जूतियाँ
जो उनको ताड़ता है सो है वो भी आदमी।

याँ आदमी प जान को वारे है आदमी
और आदमी प तेग़ को मारे है आदमी
पगड़ी भी आदमी की उतारे है आदमी
चिल्ला के आदमी को पुकारे है आदमी
और सुनके दौड़ता है सो है वो भी आदमी।

चलता है आदमी ही मुसाफ़िर हो लेके माल
और आदमी ही मारे है फाँसी गले में डाल
याँ आदमी ही सैद[३] है और आदमी ही जाल
सच्चा भी आदमी ही निकलता है मेरे लाल
और झूठ का भरा है सो है वो भी आदमी।

याँ आदमी ही शादी है और आदमी बियाह
क़ाज़ी वकील आदमी और आदमी गवाह
ताशे बजाते आदमी चलते हैं ख़ामख़ाह
दौड़े हैं आदमी ही तो मिश्अल[४] जला के राह
और ब्याहने चढ़ा है सो है वह भी आदमी

याँ आदमी नक़ीब[५] हो बोले है बार-बार
और आदमी ही प्यादे[६] हैं और आदमी सवार
हुक्क़ा सुराही जूतियाँ दौड़े बग़ल में मार

---

१. नमाज पढ़ाने वाला नेता। २. खुत्बः पढ़ने वाला (धर्मोपदेश देने वाला)। ३. शिकार ४. माशल ५. उद्घोषक ६. पैदल चलने वाले

काँधे पर रक्खे पालकी हैं दौड़ते कहार
और उसमें जो चढ़ा है सो है वो भी आदमी

बैठे हैं आदमी ही दुकानें लगा लगा
और आदमी ही फिरते हैं रख सर पे खान्चा
कहता है कोई लो कोई कहता है ला रे ला
किस किस तरह से बेंचें हैं चीज़ें बना बना
और मोल ले रहा है सो है वो भी आदमी

याँ आदमी ही लाल जवाहर है बेबहा[१]
और आदमी ही ख़ाक[२] से बदतर[३] है हो गया
काला भी आदमी है कि उल्टा है जूँ तवा
गोरा भी आदमी है कि टुकड़ा है चाँद का।
बदशक्ल बदनुमा है सो है वो भी आदमी।

मरने प आदमी ही कफ़न करते हैं तयार
नहला धुला उठाते हैं काँधे प कर सवार
कलमः[४] भी पढ़ते जाते हैं रोते हैं ज़ार-ज़ार
सब आदमी ही करते हैं मुर्दे का कारोबार
और वो जो मर गया है सो है वो भी आदमी

अशराफ़ और कमीने से ले शाह ता वज़ीर
ये आदमी ही करते हैं सब कार दिलपिज़ीर[५]
याँ आदमी मुरीद[६] है और आदमी ही पीर
अच्छा भी आदमी ही कहाता है ऐ 'नज़ीर'
और सब में जो बुरा है सो है वो भी आदमी।

---

१. अमूल्य २. मिट्टी ३. बुरा ४. मुसलमानों का धर्ममंत्र
५. दिलपसंद ६. शिष्य

जौक़ (सन् १७८९–१८५४)

बादशाह बहादुरशाह 'ज़फ़र' के काव्य-गुरु शेख़ इब्राहीम 'ज़ौक़' की कविता प्रसाद गुण तथा प्रवाह के लिए प्रसिद्ध है। स्पष्टता और सरलता के साथ प्रौढ़ता, शब्दों का मधुर चयन एवं मुहावरों के मनोहर प्रयोग से उनकी भाषा में बहुत आकर्षण उत्पन्न हो गया है। अपने समकालीन मिर्ज़ा ग़ालिब से उस समय बाज़ी मार ले जाने का कारण यही था कि ग़ालिब में जहाँ पेचीदगी और दुरूह कल्पना है वहाँ ज़ौक़ में सफ़ाई और सीधापन।

संगीत, ज्योतिष, चिकित्साशास्त्र तथा स्वप्नफल आदि के ज्ञाता होने के साथ ज़ौक़ को धार्मिक तथा आध्यात्मिक विषयों की जानकारी भी थी। अर्थात् उनमें प्रतिभा तथा लोक ज्ञान दोनों थे, परन्तु उन्होंने काव्य में अभ्यास को प्रमुखता दी। यही कारण है कि ग़ज़ल और क़सीदः दोनों के माहिर होने पर भी वह क़सीदे के ही बहुत बड़े उस्ताद माने जाते हैं क्योंकि क़सीदे के लिए भाषा की जो चुस्ती एवं आलंकारिक वैभव चाहिए वह आयास जन्य है क़सीदः में 'सौदा' के बाद दूसरा महत्वपूर्ण नाम 'ज़ौक़' का है। उनके क़सीदों में शब्दविन्यास आकर्षक और वाक्यों की कसावट तथा भाषा की चमक प्रशंसनीय है।

क़सीदः दर मदहे-अबूज़फ़र बहादुरशाह

सावन में दिया फिर महे-शव्वाल[1] दिखाई
बरसात में ईद आई क़दहकश की बन आई।

करता है हिलाल[2] अबूए-पुरख़म[3] से इशारः
साक़ी को कि भर बादः से कश्तीए-तिलाई।

है अक्सफ़िगन[4] जामे-बिलूरी से मए-सुर्ख़
किस रंग से हों हाथ न मयकश के हिनाई।

कौंदे है जो बिजली तो ये सूझे हैं नशे में
साक़ी ने है आतश से मए - तेज़ उड़ाई।

ये जोश है बाराँ का कि अफ़लाक[5] के नीचे
होवे न मुमैयज़[6] कुर्रः ए-नारी-ओ माई[7]।

पहुँचा कुमके-लश्करे-बाराँ से है यह ज़ोर
हर नाले की है दश्त में दर्या प चढ़ाई।

आलम ये हवा का है कि तासीर हवा से
गर्दूं प है ख़ुर्शीद का भी दीदः हवाई।

क्या सर्फ़े-हवा[8] है तरबो-ऐश से आलम
है मदरसे में भी सबक़े सर्फ़े हवाई।

---

१. ईद का चाँद २. दूज का चाँद ३. टेढ़ी भौंह ४. अक्स डाल रहा
५. आकाश ६. पहचाना नहीं जा सकता ७. आग तथा पानी
के झाग ८. मौसम में व्यस्त है

ख़ाली नहीं मय से रविशे - दानः - ए-अंगूर
ज़ाहिद का भी हर दानः -ए-तस्बीहे-रियाई[1] ।

करती है सबा आके कभी मुश्कफ़िशानी
करती है नसीम आके कभी लख़्लख़ःसाई ।

था सोज़नीए-ख़ार[2] का सहारा में जहाँ फ़र्श
सब्ज़े ने वहाँ मख़्मले - ख़ुशरंग बिछाई ।

आराइशे - गुलशन के लिए जामःए - रंगीं
ज़ेबाइशे-गुंचः के लिए तंग क़बाई[3] ।

है नर्गिसे-शह्ला ने दिया आँख में काजल
बर्गे-गुले-सौसन ने धड़ी लब प जमाई ।

अब्रू प करे कौसे क़ुज़ह[4] वस्मः[5] तो ख़ुर्शीद[6]
सुर्ख़ीए-शफ़क़ से करे रीश अपनी हिनाई ।

रुख़्सारः-ए-गुलचीं[7] का है सुर्ख़ी से ये आलम
जूँ वक़्ते ग़ज़ब[8] चेहरःए तुर्कने-ख़ताई[9] ।

क्या साग़रे रंगीं को किया जल्द मुहय्या
नर्गिस ने तो सरसों ही हथेली प जमाई ।

होती मुतहम्मिल[10] नहीं इक साग़रे-गुल की
शाख़े - गुले अह्मर की नज़ाकत से कलाई ।

एजाज़े-नवा-संजीए-मुर्तिब[11] से चमन में
हर ख़ार की है नीके-ज़बाँ शेर नवाई ।

---

१. मक्कारी की माला २. काँटों की मोटी चादर ३. चुस्त पोशाक ४. इंद्रधनुष ५. मेंहदी का खिज़ाब ६. सूर्य ७. माली के कपोल ८. गुस्से के वक्त ९. बहुत गोरा माशूक़ १०. बरदाश्त करने वाला ११. गायक

हैरत की नहीं जाए कि दीवारे - चमन पर
हर तायरे - तस्वीर करे नग़मः सराई।

शाहा तेरे जल्वे से है ये ईद की रौनक़
आलम ने तुझे देखके है ईद मनाई।

कहते हैं महे - नौ जिसे अब्रू ने वो तेरी
की आईनः ए - चर्ख़ में है अक्सनुमाई।

परतौ[1] से तेरे जामे - मये - ऐश सरे बज़्म
जूँ साग़रे - जमशेद करे कार्रवाई।

क्या इल्म समाए तेरा सीने में फ़लक के
दर्या की कहाँ हो सके कासे में समाई।

१. अक्स

ग़ालिब (सन् १७९७–१८६९)

कविता में पहले 'असद', बाद में 'ग़ालिब' उपनाम से प्रख्यात मिर्ज़ा असदुल्ला ख़ाँ उर्दू के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। 'ग़ालिब' के काव्य में कला और जीवन दूध-पानी की तरह मिलकर एक हो गए हैं। उनकी कविता में विचारों की गंभीरता, कल्पना की उच्चता, चिन्तन की प्रौढ़ता और कला की सूक्ष्मता कुछ इस ढंग से रच गई है कि सभी दृष्टिकोणों से उनका लोहा मानना पड़ता है। परम्परा से रस ग्रहण करते हुए भी अपनी मौलिकता की पताका किस तरह फहराई जाती है इसका निदर्शन ग़ालिब की मर्मस्पर्शी कविता के अतिरिक्त और कहीं खोजने की आवश्यकता नहीं।

ग़ज़ल

कोई उम्मीद बर नहीं आती।
कोई सूरत नज़र नहीं आती।

मौत का एक दिन मुअय्यन[1] है
नींद क्यों रात भर नहीं आती?

आगे आती थी हाले-दिल प हँसी
अब किसी बात पर नहीं आती।

जानता हूँ सवाबे-ताअतो-ज़ुह्द[2]
पर तबीअत इधर नहीं आती।

है कुछ ऐसी ही बात जो चुप हूँ
वर्नः क्या बात कर नहीं आती।

हम वहाँ हैं जहाँ से हमको भी
कुछ हमारी ख़बर नहीं आती।

मरते हैं आर्ज़ू[3] में मरने की
मौत आती है पर नहीं आती।

काबः[4] किस मुँह से जाओगे ग़ालिब
शर्म तुमको मगर नहीं आती।

---

१. नियत २. उपासना औ इंद्रिय संयम का पुण्य ३. अभिलाषा
४. मुसलमानों का तीर्थस्थान

ग़ज़ल

जौर[१] से बाज़ आए पर बाज़ आएँ क्या ?
कहते हैं हम तुमको मुँह दिखलाएँ क्या ?

रातदिन गर्दिश[२] में हैं सात आसमाँ
हो रहेगा कुछ न कुछ घबराएँ क्या ?

लाग हो तो उसको हम समझें लगाव
जब न हो कुछ भी तो धोका खाएँ क्या ?

हो लिए क्यों नामःबर[३] के साथ साथ
यारब[४] अपने ख़त को हम पहुँचाएँ क्या ?

मौजे - ख़ूँ[५] सर से गुज़र हो क्यों न जाय
आस्ताने - यार[६] से उठ जाएँ क्या ?

उम्र भर देखा किए मरने की राह
मर गए पर देखिए दिखलाएँ क्या ?

पूछते हैं वो कि 'ग़ालिब' कौन है
कोई बतलाओ कि हम बतलाएँ क्या ?

---

१. अत्याचार २. चक्कर ३. पत्रवाहक ४. ऐ ख़ुदा ५. ख़ून की लहर ६. प्रिय की चौखट

ग़ज़ल

दीवानगी से दोश[१] प ज़ुन्नार[२] भी नहीं।
यानी हमारी जेब में इक तार भी नहीं।

दिल को नियाज़े-हसरते-दीदार[३] कर चुके
देखा तो हम में ताक़ते-दीदार भी नहीं।

मिलना तेरा अगर नहीं आसाँ तो सह्ल है
दुश्वार तो यही है कि दुश्वार भी नहीं।

वे इश्क़ उम्र कट नहीं सकती है और याँ
ताक़त बक़दरे-लज़्ज़ते आज़ार[४] भी नहीं।

शोरीदगी[५] के हाथ से सर है वबाले-दोश[६]
सहरा में ऐ ख़ुदा कोई दीवार भी नहीं।

डर नाल: हाए-ज़ार[७] से मेरे ख़ुदा को मान
आख़िर नवाए-मुर्ग़े-गिरफ़्तार[८] भी नहीं।

दिल में है यार की सफ़े-मिज़गाँ[९] से रूकशी[१०]
हालाँकि ताक़ते-ख़लिशे-ख़ार भी नहीं।

इस सादगी प कौन न मर जाए ऐ ख़ुदा
लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नहीं।

देखा 'असद' को ख़ल्वतो-जल्वत[११] में बारहा
दीवान: गर नहीं है तो हुशियार भी नहीं।

---

१. कंधा २. जनेऊ ३. दर्शनाभिलाषा की भेंट ४. कष्ट सहने की हिम्मत के बराबर ५. उन्माद ६. कन्धे का बोझ ७. करुण चीख़-पुकार ८. बंदी पक्षी का स्वर ९. बरौनियों की फ़ौज १०. मुक़ाबला ११. एकांत और सभा

अनीस (सन् १८०२–१८७४)

मीर बबर अली 'अनीस' उर्दू-प्रबन्धकाव्य-क्षेत्र के अप्रतिम कवि हैं। उर्दू के मर्सिया-लेखकों में उनका स्थान सर्वोच्च है। जिस समय उर्दू शाइर विलास-कर्दम में लयपथ थे उस समय निष्कलुष कमल की भाँति 'अनीस' के काव्य का जन्म हुआ। 'अनीस' ने प्रकृति की पृष्ठभूमि में अपने पात्रों की अवतारणा की है। वह शस्त्र-संचालन में दक्ष थे, अतएव उनके मर्सियों में युद्ध-व्यूह-रचना आदि की जीती-जागती तस्वीरें देखने को मिलती हैं। साथ ही मानवीय मनोभावों के वर्णन बहुत मार्मिक तथा हृदयद्रावक हैं। 'अनीस' का काव्य धार्मिक विषयवस्तु के कारण किसी को भले ही साम्प्रदायिक प्रतीत हो, लेकिन उसका सारा वातावरण मानवता पर आधारित है। उनके मर्सिये पाठक के भीतर करुणा का भाव जगाते हैं और अन्याय के विरुद्ध लड़ने तथा न्याय के लिए शहीद होने की प्रेरणा प्रदान करते हैं।

हज़रत अब्बास की शुजाअत

टूटे वो मोरचे जो बँधे थे पए-जिदाल[१]
बर्छी गिरी ज़मीं प किसी की किसी की ढाल
अल्ला री हैबते-खलफ़े-शेरे-ज़ुल्जलाल[२]
काँपी ज़मीं खड़े हुए रोएँ तनों के बाल
मुँह ज़र्द होके रह गया हर नौजवान का।
दश्ते-नबर्द[३] खेत बना ज़ाफ़रान[४] का।

डर से हवा थी एक तरफ़ गर्द इक तरफ़
भरते थे खैबरी भी दमे-सर्द इक तरफ़
सिमटे हुए थे कूफ़े के नामर्द इक तरफ़
थे रू सियाह शाम के सब ज़र्द इक तरफ़
भागे थे नैज़ःबाज़ लड़ाई को छोड़ के।
ज़ैग़म[५] निकल गए थे तराई को छोड़ के।

रक्खा क़दम रकाब में हैदर के लाल ने
नालैने-पा[६] को फ़ख्र के चूमा हिलाल ने
बख्शी जीं सद्रे-ज़ी[७] को जिया ख़ुश जमाल[८] ने
दुम को चँवर किया फ़रसे-बे - मिसाल[९] ने
किस नाज से वह रश्के ग़िज़ाले-ख़ुतन[१०] चला
ताऊस था कि सैर को सूए - चमन चला।

---

१. युद्ध के लिए २. हज़रत अली के सपूत का आतंक ३. युद्ध-क्षेत्र
४. केसर ५. शेर ६. पैर का जूता ७. ज़ीन का मध्य भाग
८. सुन्दर ९. अनुपमेय घोड़ा १०. खुतन का हिरन

पहुँचे जो दश्ते कीं में उड़ाते हुए फ़रस
घोड़े को हाथ उठाके यह आवाज़ दी कि बस
देखीं सफ़ें[1] जमीं जो चपो-रास[2] पेशो-पस
नार: किया कि नहर प जाने की है हवस
रोकेगा जो वो मौत के पंजे में आएगा।
हट जाओ सब कि शेर तराई में जाएगा।

तुम क्या पहाड़ बीच में गर हो तो टाल दें
शेरों को हम तराई के बाहर निकाल दें
मुहलत न एक को दमे - जंगो - जिदाल दें
पानी तो क्या है आग में घोड़े को डाल दें
मुँह देखते रहें जो निगहबाँ हैं घाट के।
ले जाएँ घर प तेग़ से दर्या को काट के।

यह ज़िक्र था कि फ़ौज की जानिब से तीर आए
नैज़े उठाए शेर के मुँह पर शरीर आए
ये भी झपट के मिस्ले शहे क़िलअ:गीर[3] आए
गेती[4] हिली ग़ज़ब में जनाबे-अमीर[5] आए
घोड़ा उड़ा परों को सवारों के तोड़ के।
लपकी सफ़ों प सैफ़[6] भी काठी को छोड़ के।

आमद थी तेग़ की कि अजल का पयाम[7] था
शशदर[8] थी मौत चार तरफ़ क़त्ले-आम था
बिजली सा हर जगह फ़रसे - तेज़गाम था
शशदर थी मौत चार तरफ़ क़त्लेआम था

---

१. सेनाएँ २. दाएँ-बाएँ ३. हज़रत अली
४. ज़मीन ५. हज़रत अली ६. तलवार
७. संदेश ८. स्तब्ध

इस ग़ोल पर कभी थी कभी उस क़तार पर
पड़ता था एक तेग़ का साय: हज़ार पर।

मुँह फिर गया सिपाह[1] का रुख़ जिस तरफ़ किया
याँ आए, वाँ गए, इसे मारा, उसे लिया
बाक़ी रहे हज़ार में दस सौ में इक जिया
अल्ला रे दम, लहू प लहू तेग़ ने पिया
इस पर भी तश्नगी[2] में न तस्कीं[3] ज़री हुई।
गोया थी आग पेट में उसके भरी हुई।

बेशक था इनका हाथ अमीरे-अरब[4] का हाथ
पहुँचा वग़ा[5] में सौ तरफ़ इक तश्न: लब का हाथ
आई अजल उठा जो किसी बे-अदब का हाथ
शेरे-ख़ुदा के शेर ने मारा ग़ज़ब का हाथ
बाज़ू प आई तेग़े-दोदम[6] शान: काटकर।
पहुँचे को भी क़लम किया दस्तान: काटकर।

जिसकी तरफ़ नज़र दमे-जंगो-जिदल फिरी
कुछ हट के तेग़ से उसी जानिब अजल फिरी
रहवार[7] यूँ फिरा कि इशारे में कल फिरी
तलवार भी गलों की तरफ़ बरमहल[8] फिरी
ऐसे जरी[9] से किसको मजाले-मसाफ़[10] थी।
यूँ फिर के सफ़ की सफ़ को जो देखा तो साफ़ थी

---

१. सेना २. प्यास ३. संतोष ४. हज़रत अली
५. लड़ाई ६. दुधारी तेग़ ७. घोड़ा ८. ठीक मौक़े पर
९. बहादुर १०. युद्ध की हिम्मत

चल फिर के काटती थी वो तलवार हाथ पाँव
डर से बढ़ा न सकते थे ख़ूख़ार हाथ पाँव
सर बच गया तो हो गए बेकार हाथ पाँव
चमकी गिरी तो आठ हुए चार हाथ पाँव

रूहें पुकारीं तेग़ फिर आई निकल चलो।
बोली अजल अब उठके तो पंजों के भल चलो।

नैज़े इधर क़लम तो उधर बर्छियाँ क़लम
तरकश दा नोम, टुकड़े कमानें, निशाँ क़लम
हर हाथ में क़लम की तरह उस्तख़ाँ क़लम
मुँह तेग़ का ख़राब सिनाँ[1] की ज़बाँ क़लम

जब सन से आई सर प किसी बदख़िसाल[2] के।
गोया सुमूम[3] चल गई फूलों प ढाल के।

जाती थी हर परे की तरफ़ सन से बार बार
चढ़कर सवार गिरते थे तौसन[4] से बार बार
उठती थी अलअमाँ की सदा रन से बार बार
हर सर का बार उतरता था गर्दन से बार बार

ग़ारत हुए तबाह हुए बेतुज़ुक[5] हुए।
ज़र्बे-गराँ[6] जो उठ न सकी क्या सुबुक[7] हुए।

ख़ुश्की में थी जो आग तो आतश तरी में थी
हमनामे - ख़ुल्फ़क़ारे - अली सफ़दरी[8] में थी
तलवार थी कि बर्क़ लिबासे - परी में थी
बेबाक इसलिए थी कि दस्ते - जरी में थी

---

१. भाला २. बुरे स्वभाववाला ३. लू
२. घोड़ा ५. अपमानित ६. भारी चोट
७. हलके ८. सेना विदीर्ण करना

खूँ भी इसे हलाल दियत[1] भी मआफ़ थी।
काटा था सौ गलों को मगर पाक साफ़ थी।

सारे रिसालःदार तवाही में पड़ गए
अब मुँह किसे दिखाएँ कि चेहरे बिगड़ गए
नामी जो थे जवाँ क़दम उनके उखड़ गए
भागे जो सब निशाँ भी खिजालत[2] से गड़ गए

अलमों के पास ढेर फरहरों के रन में थे।
रेती पे बैरक़े[3] थीं कि मुर्दे कफ़न में थे।

पहने हुए थे जिस्म में ज़िरहें जो चुस्त चुस्त
चोटें कड़ी पड़ीं तो हुए वो भी सख़्त सुस्त
ख़ौफ़े अजल से भूल गए वादःए नख़ुस्त[4]
टूटी सफ़ों में होश किसी के न थे दुरुस्त

इक शोर था कि जान गई इस लड़ाई में।
घोड़े भगाओ आग लगी है तराई में।

मिग़फ़र[5] न सर के पास न खंजर कमर से पास
बेटे के पास बाप न बेटा पिदर के पास
क़ब्ज़े के पास तेग़ न दस्तः तबर[6] के पास
कड़ियाँ ज़िरह के पास न दामन सिपर[7] के पास

बोड़ी सिनान पर थी न परचम निशान पर।
पैकाँ[8] न तीर पर था न चिल्ला कमान पर।

---

१. हत्या के बदले में कुछ देना २. लज्जा ३. झंडियाँ ४. पहला
५. शिरस्त्राण ६. फरसा ७. ढाल ८. बाण की नोंक

चकबस्त (सन् १८८२-१९२६)

पंडित ब्रजनारायण चकबस्त ने युग की परिस्थितियों से प्रेरणा ग्रहण करके अपने काव्य को राष्ट्रीयता से अनुप्राणित किया है। भारतीय संस्कृति, देश-प्रेम तथा राष्ट्रीय आंदोलन उनकी कविता के मार्मिक विषय हैं। कवि की वतनपरस्ती उनके काव्य की एक-एक पंक्ति से प्रकट होती है। चकबस्त की भाषा एवं भाव दोनों ही भारतीयता के अनुगामी हैं।

रामायन का एक सीन

रुख़्सत हुआ वो बाप से लेकर ख़ुदा का नाम
राहे-वफ़ा की मंजिले-अव्वल हुई तमाम
मंज़ूर था जो माँ की ज़ियारत[1] का इंतिज़ाम
दामन से अश्क पोंछ के दिल से किया कलाम
इज़हारे-बेकसी[2] से सितम होगा और भी।
देखा हमें उदास तो ग़म होगा और भी।

दिल को सँभालता हुआ आख़िर वो नौनिहाल
ख़ामोश माँ के पास गया सूरते-ख़याल
देखा तो एक दर में वो बैठी है ख़स्तः हाल
सक्तः[3] सा हो गया है य है शिद्दते-मलाल
तन में लहू का नाम नहीं ज़र्द रंग है।
गोया बशर नहीं कोई तस्वीरे-संग[4] है।

क्या जाने किस ख़याल में गुम थी वह बेगुनाह
नूरे-नज़र प दीद : ए-हसरत से की निगाह
जुंबिश हुई लबों को भरी एक सर्द आह
ली गोशःहाए-चश्म[5] से अश्कों ने रुख़ की राह
चेहरे का रंग हालते-दिल खोलने लगा।
हर मूए-तन[6] ज़बाँ की तरह बोलने लगा।

---

१. दर्शन २. विवशता की अभिव्यक्ति ३. मूर्च्छा
४. पत्थर की मूर्ति ५. नयन कोर ६. शरीर का रोम

रोकर कहा "ख़मोश खड़े क्यों हो मेरी जाँ
मैं जानती हूँ जिस लिए आए हो तुम यहाँ
सबकी ख़ुशी यही है तो सहरा[1] को हो रवाँ
लेकिन मैं अपने मुँह से न हर्गिज़ कहूँगी हाँ
किस तरह बन में आँखों के तारे को भेज दूँ
जोगी बना के राजदुलारे को भेज दूँ।

लेती किसी फ़क़ीर के घर में अगर जनम
होते न मेरी जान को सामान ये वहम
डसता न साँप बन के मुझे शौकतों-हशम[2]
तुम मेरे लाल थे मुझे किस सल्तनत से कम
मैं ख़ुश हूँ फूँक दे कोई इस तख़्तों-ताजको।
तुम ही नहीं तो आग लगाऊँगी राज को।

किन किन रियाज़तों[3] से गुज़ारे हैं माहो-साल
देखी तुम्हारी शक्ल जब ऐ मेरे नौ निहाल
पूरा हुआ जो ब्याह का अरमान था कमाल
आफ़त ये आई मुझ प हुए जब सफ़ेद बाल
छुटती हूँ उनसे जोग लिया जिनके वास्ते।
क्या सब किया था मैंने इसी दिन के वास्ते ?

ऐसे भी नामुराद बहुत आएंगे नज़र
घर जिनके वे चिराग़ रहे आह उम्र भर
रहता मेरा भी नख़्ले-तमन्ना[4] जो बेसमर[5]
ये जाए सब्र थी कि दुआ में नहीं असर

---

१. बन २. ठाट-बाट और शान-शौकत ३. कष्टों-व्रतों
४. इच्छा का पेड़ ५. फलहीन

लेकिन यहाँ तो वन के मुक़द्दर विगड़ गया।
फल फूल लाके बाग़-तमन्ना उजड़ गया।"

सुनकर ज़बाँ से माँ की यह फ़र्याद दर्द ख़ेज़
उस ख़स्ताजाँ के दिल प चली ग़म कीतेग़-तेज़
आलम ये था क़रीव कि आँखें हों अश्करेज़
लेकिन हज़ार ज़ब्त से रोने से की गुरेज़

सोचा यही कि जान से वेकस गुज़र न जाय।
नाशाद हमको देखके माँ और मर न जाय।

फिर अर्ज़ की ये मादरे-नाशाद[1] के हुज़ूर
"मायूस क्यों हैं आप अलम[2] का है क्यों वफ़ूर[3]
सद्मः ये शाक़[4] आलमे-पीरी[5] में है ज़रूर
लेकिन न दिल से कीजिए सब्रो-क़रार दूर

शायद ख़िज़ाँ से शक्ल अयाँ हो वहार की।
कुछ मस्लहत[6] इसी में हो परवर दिगार की।

राहत हो या कि रंज खुशी हो इंतिशार[7]
वाजिब हरएक रंग में है शुक्रे-किर्दगार[8]
तुमही नहीं हो कुश्तए - नैरंगे - रोज़गार[9]
मातम कदे में दह्र के लाखों हैं सोगवार

सख़्ती सही नहीं कि उठाई कड़ी नहीं।
दुनिया में क्या किसी प मुसीवत पड़ी नहीं?

---

१. दुखी २. दुःख ३. आधिक्य ४. असह्य
५. वृद्धावस्था ६. भलाई ७. परेशानी ८. ईश्वर का अनुग्रह
९. सांसारिक परिवर्तन के मारे हुए

माँ-बाप मुँह ही देखते थे जिनका हर घड़ी
क़ायम थीं जिनके दम से उमीदें बड़ी बड़ी
दामन प जिनके गर्द भी उड़कर नहीं पड़ी
मारी न जिनको ख़ाब में भी फूल की छड़ी
मासूम जब वो गुल हुए रंगे-हयात[1] से।
उनको जला के ख़ाक किया अपने हात से।

कहते थे लोग देख के माँ-बाप का मलाल
इन बेकसों की जान का बचना है अब मुहाल
है किब्रिया[2] की शान गुज़रते ही माहो-साल
ख़ुद दिल से दर्दे-हिज्र[3] का मिटता गया ख़याल
हाँ कुछ दिनों तो नौह:[4]ओ-मातम[5] हुआ किया।
आख़िर को रो के बैठ रहे और क्या किया ?

पड़ता है जिस ग़रीब प रंजो-मेहन का वार
करता है उसको सब्र अता आप किर्दगार
मायूस[6] होके होते हैं इंसाँ गुनाहगार
ये जानते नहीं वो है दानाए-रोज़गार
इंसान उसकी राह में साबित क़दम रहे।
गर्दन वही है अब्रे-रज़ा[7] में जो ख़म रहे।

और आपको तो कुछ भी नहीं रंज का मक़ाम
बादे-सफ़र वतन में हम आएँगे शाद काम
होते हैं बात करते में चौदह बरस तमाम
क़ायम उमीद ही से है दुनिया है जिसका नाम

---

१. जीवन २. ईश्वर ३. वियोग की पीड़ा ४. दुःख भरे शब्द
५. रोना-पीटना ६. निराश ७. अल्लाह की मर्जी या हुक्म

और यों कहीं भी रंजो-बला से मफर[1] नहीं।
क्या होगा दो घड़ी में किसी को ख़बर नहीं।

अपनी निगाह है करमे-कारसाज़[2] पर
सहरा चमन बनेगा वो है मेहरबाँ अगर
जंगल हो या पहाड़ सफ़र हो कि हो हज़र[3]
रहता नहीं वो हाल से बंदे के बेख़बर
उसका करम शरीक अगर है तो ग़म नहीं।
दामाने-दश्त दामने-मादर से कम नहीं।"

ये गुफ़्तगू जरा न हुई माँ प कारगर
हँसकर बक़ूरे-प्यास से लड़के प की नज़र
चेहरे प यों हँसी का नुमायाँ हुआ असर
जिस तरह चाँदनी का हो शमशान में गुज़र
पिनहाँ जो बेकसी थी वो चेहरे प छा गई।
जो दिल की मुर्दनी थी निगाहों में आ गई।

फिर यह कहा "कि मैंने सुनी सब ये दास्ताँ
लाखों बरस की उम्र हो देते हो माँ को ज्ञाँ
लेकिन जो मेरे दिल को है दरपेश इम्तिहाँ
बच्चे हो उसका इल्म नहीं तुमको बेगुमाँ
इस दर्द का शरीक तुम्हारा जिगर नहीं।
कुछ ममता की आँच को तुमको खबर नहीं।

आख़िर है उम्र है यह मेरा वक़्ते-वापसीं
क्या ऐतबार आज हूँ दुनिया में कल नहीं
लेकिन वो दिन भी आएगा इस दिल को है यक़ीं
सोचोगे जब कि रोती थी क्यों मादरे हज़ीं

---

१. छुटकारा २. ईश्वरीय कृपा ३. गृहनिवास

औलाद जब कभी तुम्हें सूरत दिखाएगी।
फ़र्याद इस ग़रीब की तब याद आएगी।"

नश्तर थे राम के लिए यह हर्फ़-आर्ज़ू[1]
दिल हिल गया सरकने लगा जिस्म से लहू
समझे जो माँ के दैन[2] को ईमानो-आबरू
सुननी पड़े उसे यह ख़िजालत की गुफ्तगू
कुछ भी जवाब बन न पड़ा फ़िक्रो-ग़ौर से।
क़दमों पे माँ के गिर पड़ा आँसू के तौर से।

"है दूर इस ग़ुलाम से ख़ुदराई[3] का ख़याल
ऐसा गुमान भी हो ये मेरी नहीं मजाल
गर सौ बरस भी उम्र को मेरी न हो ज़वाल
जो दैन आपका है अदा हो ये है मुहाल[4]
जाता कहीं न छोड़ के क़दमों को आपके।
मजबूर कर दिया मुझे वादे ने बाप के।

आराम ज़िंदगी का दिखाता है सब्ज़ बाग़
लेकिन बहारे-ऐश का मुझको नहीं दमाग़
कहते हैं जिसको धर्म वह दुनिया का है चराग़
हट जाऊँ इस रविश से तो कुल में लगेगा दाग़
बेआबरू यह बंस न हो यह हिरास[5] है।
जिस गोद में पला हूँ मुझे उसका पास[6] है।

---

१. मनःकामना के शब्द २. कर्ज़ ३. स्वेच्छाचार ४. पतन
५. डर ६. ध्यान

वनवास पर ख़ुशी से जो राज़ी न हूँगा मैं
किस तरह मुँह दिखाने के क़ाबिल रहूँगा मैं
क्योंकर ज़बाने ग़ैर के ताने सुनूँगा मैं
दुनिया जो यह कहेगी तो फिर क्या करूँगा मैं
"लड़के ने बेहयाई को नक़्शे जबीं[1] किया।
क्या बेअदब था बाप का कहना नहीं किया।"

तासीर का तिलिस्म था मासूम का ख़िताब
ख़ुद माँ के दिल को चोट लगी सुन के ये जवाब
ग़म की घटा से हट गई तारीकिए-इताब[2]
छाती भर आई ज़ब्त की बाक़ी रही न ताब
सरका के पाँव, गोद में सर को उठा लिया।
सीने से अपने लख़्ते-जिगर[3] को लगा लिया।

दोनों के दिल भर आए हुआ और ही समाँ
गंगो-जमन की तरह से आँसू हुए रवाँ
हर आँख को नसीब ये अश्के-वफ़ा कहाँ
इन आँसुओं का मोल अगर है तो नक़्दे-जाँ
होती है इनकी क़द्र फ़क़त दिल के राज में।
ऐसा गुहर[4] न था कोई दशरथ के ताज में।

१. माथे का निशान २. क्रोध ३. जिगर का टुकड़ा ४. मोती

फ़िराक़ गोरखपुरी (सन् १८८६–१९८२)

रघुपतिसहाय 'फ़िराक़' गोरखपुर में जन्मे, इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी० ए० प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया; फिर क्रिश्चियन कालेज लखनऊ तथा कानपुर के सनातनधर्म कालेज में अध्यापक हुए। वहाँ रहकर उन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से एम०ए० (अँगरेज़ी) परीक्षा दी और द्वितीय श्रेणी प्राप्त की तत्पश्चात् उनकी नियुक्ति इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अंग्रेज़ी-विभाग में लेक्चरार के पद पर हो गई और सेवा से अवकाश ग्रहण करने तक वहीं प्राध्यापक रहे। बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् 'फ़िराक़' ने स्वतंत्रतासंग्राम में सक्रिय भाग भी लिया। अतः राष्ट्रीयता उनकी शाइरी का एक अंग बन गई।

'फ़िराक़' साहब उर्दू के वर्तमानकालीन उच्च शाइरों में गिने जाते हैं। इसके दो कारण हैं—प्रथम कि उन्होंने उर्दू ग़ज़ल में आशिक़ के व्यक्तित्व को एक विशिष्ट गंभीरता एवं मानसिक उच्चता पर प्रतिष्ठित किया। 'मीर' 'ग़ालिब' आदि के बाद ग़ज़ल के प्रेम में गिरावट आ गई थी। 'इक़बाल' के काव्य में दर्शन हावी है, प्रेम की हरारत दब गयी है। 'फ़िराक़' ने प्रेम की भौतिकता को स्वीकार करते हुए भी उसके मनोवैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक पहलुओं को ज़्यादा उजागर किया। दूसरी बात यह कि उन्होंने अपनी शाइरी में भारतीय संस्कृति का चित्रण किया और हिन्दी शब्दों का प्रयोग करने में ख़ूब उदारता दिखाई।

ये सुर्मई फ़ज़ाओं[1] की कुछ कुनमुनाहटें
मिलती हैं मुझको पिछले पहर तेरी आहटें।

इस कायनाते-ग़म[2] की फ़सुर्दा[3] फ़ज़ाओं में
बिखरा गये हैं आके वो कुछ मुस्कुराहटें।

ऐ जिस्मे-नाज़नीने-निगारे-नज़रनवाज़[4]
सुब्हे-शबे-विसाल तेरी मलगजाहटें।

चलती है जब नसीमे-ख़याले-ख़रामे-नाज़[5]
सुनता हूँ दामनों की तेरे सरसराहटें।

चश्मे-सियह तबस्सुमे-पिनहाँ लिये हुये
पौ फूटने से क़ब्ल उफ़ुक़ की उदाहटें।

जुंबिश में जैसे शाख़ हो गुलहा-ए-नग़्मः की
इक पैकरे-जमील की ये लहलहाहटें।

झोंकों की नज़्र है, चमने-इंतिज़ारे-दोस्त
बादे-उम्मीदो-बीम[6] की ये सनसनाहटें।

हो सामना अगर तो खिजिल[7] हो निगाहे-बर्क़[8]
देखीं हैं अज़्व-अज़्व में वो अचपलाहटें।

रुख़सारे-तर से ताज: हो बाग़े-अदन की याद
और उसकी पहली सुब्ह की वो रसमसाहटें।

साज़े-जमाल के ये नवाहा-ए-सर्मदी[9]
जोबन तो वो फ़रिश्ते सुनें गुनगुनाहटें।

होने लगा हूँ ख़ुद से क़रीं ऐ शबे-अलम
मैं पा रहा हूँ हिज्र में कुछ अपनी आहटें।

मेरी ग़ज़ल की जान समझना उन्हें 'फ़िराक़'
शम्ए-ख़याले-यार की ये थरथराहटें।

---

१. वातावरण २. दुःख-जगत ३. उदास ४. दृष्टिमोहक प्रिय का शरीर
५. प्रेमिका की मस्त चाल की कल्पना-सी वायु ७. उम्मीद तथा भय की वायु ८. लज्जित ९. दैवी स्वर

ज़मीं बदली, फ़लक बदला, मज़ाक़े-ज़िन्दगी[1] बदला
तमद्दन[2] के क़दीम[3] अक़दार[4] बदले, आदमी बदला।

ख़ुदा-ओ अह्रमन बदले, वो ईमाने-दुई[5] बदला
हुदूदे-ख़ैरो-शर[6] बदले, मज़ाक़े-काफ़िरी बदला।

नये इंसान का जब दौरे-ख़ुदनाआगही बदला
रमूज़े-बेख़ुदी[7] बदले, तक़ाज़ा-ए-ख़ुदी बदला।

बदलते जा रहे हैं हम भी दुनिया को बदलने में
नहीं बदली अभी दुनिया ? तो दुनिया को अभी बदला।

नयी मंज़िल के मीरे-कारवाँ भी और होते हैं
पुराने ख़िज्रे-रह बदले, वो तर्ज़े-रहबरी बदला।

कभी सोचा भी है, ऐ नज़्मे-कोहना[8] के ख़ुदावन्दो[9]
तुम्हारा हश्र क्या होगा, जो ये आलम कभी बदला।

ज़हे-सोज़े-ग़मे-आदम, ख़ुशा साज़े-दिले-आदम
इसी इक शम्अ की लौ ने जहाने-तीरगी बदला।

बताये तो बताये उसको तेरी शोख़ी-ए पिनहाँ[10]
तेरी चश्मे-तवज्जुह है कि तर्ज़े-बेरुख़ी बदला।

बफ़ज़े-आदमी-ख़ाकी ज़मीं सोना उगलती है
इसी ज़र्रे ने दौरे-महरो माहो-मुश्तरी बदला।

सितारे जागते हैं, रात लट छटकाये सोती है
दबे पावों किसी ने आके ख़्वाबे-ज़िन्दगी बदला।

फ़िराके-हमनवा-ए-मीरो-ग़ालिब[11] अब नये नग़्मे
वो बज़्मे-ज़िन्दगी बदली वो रंगे-शाइरी बदला।

---

१. जीवन की रुचि २. संस्कृति ३. पुराने ४. मूल्य ५. द्वैतभाव
६. अच्छे-बुरे की सीमाएँ ७. आत्मविस्मृति के रहस्य ८. नेता
९. पुरानी व्यवस्था १०. स्वामियो ११. अन्तर्हित चंचलता
१२. 'मीर' 'ग़ालिब' के सुरमें सुर मिलाने वाला

तरानः-ए इश्क़

जल्वः-ए-गुल को बुलबुल बहुत है
शमा को गिरा-ए-शाम।

वादे-बहारी गुल को बहुत है
मुझको तेरा नाम।

बिजली चमके काली घटा में
जाम में आतशे-सर्द।

चमके राख जोगी की जटा में
मुझमें तेरा दर्द।

बल न छुटे तेरे बालों से
और नय से फ़र्याद।

पल भर मन न छुटे कालों से
मुझसे तेरी याद।

शाख प शोलः-ए-गुल की लपक हो
चर्ख़ प अंजुमो-माह।

दुनिया पर सूरज की चमक हो
मुझ पर तेरी निगाह।

रुबाइयाँ

हर जल्वे से एक दर्स-नुमू[1] लेता हूँ
लबरेज़ कई जामो-सुबू लेता हूँ
पड़ती है जब आँख तुझ पे ऐ जाने-बहार
संगीत की सरहदों को छू लेता हूँ।

नहला के छलके-छलके निर्मल जल से
उलझे हुए गेसुओं में कंघी कर के
किस प्यार से देखता है बच्चा मुँह को
जब घुटनों में लेके है पिन्हाती कपड़े।

मंडप के तले खड़ी है रस की पुतली
जीवन साथी से प्रेम की गाँठ बँधी
महके शोलों के गिर्द भाँवर के समय
मुखड़े प नर्म छूट-सी पड़ती हुई।

लहरों में खिला कँवल नहाये जैसे
दोशीज़ा-ए-सुब्ह गुनगुनाये जैसे
ये सज, ये धज, ये नर्म उजाला, ये निखार
बच्चा सोते में मुस्कराये जैसे।

तारीकी[2] का रहे ज़माने में न दाग़
उस नूरे हयात[3] का लगाते हैं सुराग़
मौजे-नफ़सेे-सर्द[4] दिये जाती है लौ
धारे प फ़ना[5] के हम जलाते हैं चराग़।

अल्फ़ाज़ के पर्दों में करो इसका यक़ी
लेती है साँस नज्मे शाइर की ज़मीं
आहिस्तः ही गुनगुनाओ मेरे अश्आर
डर है न मेरे ख़्वाब कुचल जायें कहीं।

---

१. प्रकट सबक़ २. अँधेरापन ३. जीवन, प्रकाश ४. ठंडी साँस की लहर ५. नाश

साहिर लुधियानवी (सन् १९२१–१९८०)

अब्दुल हयी 'साहिर' उर्दू के प्रगतिशील शाइर हैं। साहिर की शाइरी में रोमानी वातावरण की पृष्ठभूमि में समाज की कटुता एवं दर्द बड़े सलीक़े से उभरे हैं। प्रेम की असफलता ने जो गहरी चोट उनके दिल को पहुँचाई उससे शाइरी में प्रश्नाकुलता पैदा हो गई। दिल की निरन्तर प्रश्न करने की आदत ने दिमाग़ में विचारावर्तन किया। परिणाम यह हुआ कि साहिर की शाइरी प्रेम के व्यक्तिगत दाइरे को तोड़कर मानव-प्रेम तक पहुँच गई।

ताज-महल

ताज तेरे लिए इक मज़हरे-उल्फ़त[1] ही सही
तुमको इस वादी-ए-रंगीं से अक़ीदत ही सही

मेरी महबूब कहीं और मिलाकर मुझ से !

बज्मे-शाही में[2] ग़रीबों का गुज़र, क्या मानी ?
सब्त[3] जिस राह पे हों सतवते-शाहों के[4] निशां
उस पे उल्फ़त भरी रूहों का सफ़र क्या मानी ?

मेरी महबूब पसे-पर्दा-ए-तश्हीरे-वफ़ा[5]
तूने सतवत के निशानों को तो देखा होता
मुर्दा शाहों के मक़ाबिर से बहलने वाली !
अपने तारीक[6] मकानों को तो देखा होता

अनगिनत लोगों ने दुनिया में मोहब्बत की है
कौन कहता है कि सादिक़[7] न थे जज्बे उनके
लेकिन उनके लिए तश्हीर का सामान नहीं
क्योंकि वो लोग भी अपनी ही तरह मुफ़लिस थे

---

१. प्रेम प्रकटकर्ता २. राज-सभा ३. अंकित ४. राज-आतंक
५. वफ़ा के विज्ञापन के पर्दे के पीछे ६. अंधकार-पूर्ण ७. सत्य

ये इमारातो-मक़ाबिर, ये फ़सीलें, ये हिसार
मुतलक़ुल्हुक्म[1] शहनशाहों की अज़मत[2] के सुतूं[3]
दामने-दहर पे उस रङ्ग की गुलकारी[4] है
जिसमें शामिल है तिरे और मिरे अजदाद[5] का खूं

मेरी महबूब ! उन्हें भी तो मोहब्बत होगी
जिनकी सन्नाई[6] ने बख्शी है इसे शक्ले-जमील[7]
उनके प्यारों के मक़ाबिर रहे बेनामो-नमूद
आज तक उन पे जलाई न किसी ने क़िन्दील

ये चमनज़ार ये जमना का किनारा, ये महल
ये मुनक़्क़श[8] दरो-दीवार, ये मेहराब, ये ताक़
इक शहनशाह ने दौलत का सहारा लेकर
हम ग़रीबों की मोहब्बत का उड़ाया है मज़ाक़

मेरी महबूब कहीं और मिलाकर मुझसे !

मादाम

आप बेवजह परेशान-सी क्यों हैं मादाम[9]
लोग कहते हैं तो फिर ठीक ही कहते होंगे
मेरे एहबाब ने तहज़ीब न सीखी होगी
मेरे माहौल में इन्सान न रहते होंगे

---

१. स्वेच्छाचारी २. गौरव ३. स्तम्भ ४. बेल-बूटे ५. पूर्वजों ६. कारीगरी ७. सुन्दर रूप ८. नक्क़ाशी युक्त ९. 'मैडम'

नूरे-सरमाया से[१] है रूह-तमद्दुन की जिला[२]
हम जहां हैं वहां तहज़ीब नहीं पल सकती
मुफ़लिसी हिस्से-लताफ़त[३] को मिटा देती है
भूक आदाब के सांचे में नहीं ढल सकती

लोग कहते है तो लोगों पे तअज्जुब कैसा
सच तो कहते हैं कि नादारों की इज़्ज़त कैसी
लोग कहते हैं—मगर आप अभी तक चुप हैं
आप भी कहिये ग़रीबों में शराफ़त कैसी

नेक मादाम ! बहुत जल्द वो दौर आएगा
जब हमें ज़ीस्त के अदवार[४] परखने होंगे
अपनी ज़िल्लत की क़सम, आपकी अज़मतकी क़सम
हमको ता'ज़ीम[५] के मेआर[६] परखने होंगे

हमने हर दौर में तज़लील[७] सही है लेकिन
हमने हर दौर के चेहरे को ज़िया[८] बख़्शी है
हमने हर दौर में मेहनत के सितम झेले हैं
हमने हर दौर के हाथों को हिना बख़्शी है

लेकिन इन तल्ख़ मुबाहिस[९] से भला क्या हासिल
लोग कहते हैं तो फिर ठीक ही कहते होंगे
मेरे एहबाब ने तहज़ीब न सीखी होगी
मैं जहां रहता हूँ इन्सान न रहते होंगे

---

१. पूँजी के प्रकाश से २. चमक ३. कोमलता की अनुभूति
४. जीवन के युग, मूल्य ५. आदर-सम्मान के ६. मानदण्ड
७. अपमान ८. चमक ९. कटु विवाद

आवाजे-आदम

दबेगी कब तलक आवाज़े-आदम[१], हम भी देखेंगे
रुकेंगे कब तलक ज़ज़्बाते-बरहम हम भी देखेंगे
चलो यूं ही सही ये जौरे-पैहम[२] हम भी देखेंगे

दरे-ज़िन्दां[३] से देखें या उरूजे-दार से देखें
तुम्हें रुसवा[४] सरे-बाज़ारे-आलम हम भी देखेंगे
ज़रा दम लो मआले-शौकते-जम हम भी देखेंगे

ब-ज़ोमे-क़ुव्वते-फ़ौलादो-आहन देख लो तुम भी
ब-फ़ैजे-जज्बा-ए-ईमाने-मोहकम[५] हम भी देखेंगे
जबीने-कज-कुलाही ख़ाक पर ख़म हम भी देखेंगे

मुकाफ़ाते-अमल तारीख़े-इन्सां की रवायत[६] है
करोगे कब तलक नावक[७] फ़राहम[८] हम भी देखेंगे
कहां तक है तुम्हारे जुल्म में दम हम भी देखेंगे

ये हंगामे-विदा-ए-शब है ऐ जुल्मत के फ़रज़न्दो
सहर के दोश पर गुलनार परचम हम भी देखेंगे
तुम्हें भी देखना होगा ये आलम हम भी देखेंगे

---

१. मानव की आवाज़ २. लगातार अत्याचार ३. कारागार का द्वार ४. अपमानित ५. दृढ़ ईमान की भावना की कृपा से ६. परिपाटी ७. तीर ८. एकत्रित

रामप्रसाद 'बिस्मिल' (सन् १८९७–१९२७)

राम प्रसाद 'बिस्मिल' देश प्रेम के एक ऐसे अतुलनीय दीवाने थे जिन्होंने देश के आगे अपने प्राणों का मूल्य धूल कण के बराबर भी नहीं समझा। महान् क्रान्तिकारी 'बिस्मिल' अँगरेज़ों के अत्याचार-वात्याचकों में लौहपुरुषों की भाँति अडिग खड़े रहे। प्रसिद्ध 'काकोरी केस' के वह उद्भावक, संयोजक तथा प्रवर्त्तक थे। उन्हें सन् १९२७ में अँगरेजों ने फाँसी दी, लेकिन उनके द्वारा जलाई गई क्रान्ति की मशाल को चन्द्रशेखर आज़ाद, भगतसिंह, राजेन्द्र लाहिड़ी, अश्फ़ाक़ उल्ला खाँ आदि ने आगे बढ़ाया।

'बिस्मिल' की शाइरी में देश भक्ति की धधकती ज्वाला की ज्योति एवं उष्णता है। उनकी शाइरी मात्रा में अत्यल्प है, लेकिन उसका प्रभाव ग़ज़ब का था। उनका तरानः 'दिल फ़रोशी की तमन्ना' गाते हुए न मालूम कितने दीवाने हँसते-हँसते फाँसी का झूला झूल गए कितने प्राण हथेली पर लेकर स्वतंत्रता संग्राम में जूझ गए।

मुक्तक

दिल फ़िदा करते हैं, कुर्बान जिगर करते हैं
पास जो कुछ है वो माता की नज़र करते हैं
खानः वीरान कहाँ, देखिये घर करते हैं
खुश रहो अहले-वतन, हम तो सफ़र करते हैं।

क्रान्ति का गीत

सर फ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
देखना है ज़ोर कितना बाज़ू-ए-क़ातिल में है।
रहबरे-राहे-मुहब्बत[1] रह न जाना राह में
लज़्ज़ते-सहरानवर्दी[2] दूर-ए-मंज़िल में है।
अब न अगले वलवले हैं और न अरमानों की भीड़
एक मिट जाने की हसरत बस दिले-'बिस्मिल' में है।
आज मक़्तल[3] में ये क़ातिल कह रहा है बार-बार
अब भला शौक़े-शहादत भी किसी के दिल में है?
वक़्त आने दे, बता देंगे तुझे ऐ आसमाँ
हम अभी से क्या बतायें क्या हमारे दिल में है?
ऐ शहीदे-मुल्को-मिल्लत[4] हम तेरे ऊपर निसार
अब तेरी हिम्मत का चरचा ग़ैर की महफ़िल में है।

बलिदान का गीत

मिट गया जब मिटने वाला, फिर सलाम आया तो क्या?
दिल की बरबादी के बाद, उनका पयाम आया तो क्या?
काश! अपनी ज़िन्दगी में हम ये मंज़र देखते,
यूँ सरे-तुरबत[5] कोई महशर-ख़राम[6] आया तो क्या?
ऐ दिले नाकाम मिट जा अब तो कूये-यार में,
फिर मेरी नाकामियों के बाद काम आया तो क्या?
आख़िरी शब दीद के क़ाबिल थी 'बिस्मिल' की तड़प,
सुब्ह दम कोई अगर बाला ए-बाम आया तो क्या?

---

१. प्रेम मार्ग के पथिक २. रेगिस्तानों में भटकते फिरने की लज़्ज़त
३. वधस्थल ४. देश और धार्मिक आस्था पर निछावर होने वाले
५. समाधि के पास ६. प्रलयंकरी चाल वाला

Indian Institute of ... ACC NO. 104385

Library IIAS, Shimla
H 819.1 Aw 14 U
00104385